शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 8 अंक 29 **त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका** 10 जनवरी, 2024

पीयर रिव्यू समिति :

डॉ.शांति नायर
डॉ.के श्रीलता
डॉ.बी.अशोक

मुख्य संपादक

डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक

डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक

प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल

डॉ.बिन्दु सी.आर
डॉ.षीना यू.एस
डॉ.सुमा आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी एस.एस
डॉ.धन्या एल
डॉ.कमलानाथ एन.एम
डॉ.अश्वती जी.आर

इस अंक में

संपादकीय :

समकालीन संदर्भ में मीडिया का वर्चस्व : डॉ. के श्रीलता 5

'ललितादित्य' उपन्यास – एक परिचयात्मक दृष्टि : डॉ.षीबा शरत.एस 10

रामविलास शर्मा की कविता में जनता का ऐतिहासिक उत्खनन : मधु वासुदेवन 15

'नगाड़े की तरह बजते शब्द"- पितृसत्तात्मकता के विरुद्ध बजनेवाला आदिवासी नारी का नगाड़ा : डॉ.अंबिली.टी 20

ईश्वर और धार्मिक प्रथा के नाम पर धोखे की अभिव्यक्ति जसिंता केरकेट्टा की कविता में : डॉ. प्रदीपा कुमारी आर 25

नवजागरण कालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता : डॉ. एम.जी.बिन्दु 27

कठोर वास्तविकता का दर्पण है 'अस्थि फूल ' : अभिषेक शर्मा, अन्नू शर्मा 31

समकालीन हिन्दी उपन्यास में किन्नर विमर्श : डॉ.राजेश कुमार आर 35

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श (दलित कविताओं के विशेष संदर्भ में) : डॉ.धन्या बी 38

पारिस्थितिक सजगता की कविता 'असाध्य वीणा' : डॉ.जस्टी इम्मानुएल 42

हिंदी बालगीत में जेंडर प्रस्तुतीकरण: विश्लेषण : डॉ. मधुप्रिया 46

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946679280, 9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

जयशंकर प्रसाद – बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक

'शोध सरोवर पत्रिका' के जनवरी अंक का 'संपादकीय' बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्ववाले बहुचर्चित हिन्दी लेखक श्री जयशंकर प्रसाद पर है, क्योंकि जनवरी प्रसादजी का जन्म मास है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के विख्यात लेखक श्री जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी 1890 को उत्तरप्रदेश के वाराणसी जिले में काशी के गोवर्धन सराय में हुआ। उनका एक संपन्न परिवार था। पिता देवीप्रसाद साहू इत्र और तंबाकू का व्यापार करते थे। यह व्यापार करने के कारण उनका परिवार 'सुंघनी साहू' नाम से प्रसिद्ध था। प्रसादजी बचपन में ही साहित्य के प्रति रुचि रखते थे। अपने पिताजी और बड़े भाई शंभू रत्न साहू से उन्हें प्रोत्साहन भी मिला। उनके 8 साल की उम्र में माताजी गुज़र गयीं। 10 साल की उम्र में पिताजी भी गुज़र गये तो उनके रिश्तेदार पिताजी का व्यापार संभालने लगे। किन्तु आर्थिक स्थिति खराब हो गयी। उसे पूर्ववत् बनाने को प्रसादजी को खूब परिश्रम करना पड़ा। सन् 1906 में बड़े भाई भी गुज़र गये तो भाभी ने प्रसादजी की शादी करा दी। यूँ सन् 1909 में उनकी शादी विध्यवाटिनी की साथ संपन्न हुई। किन्तु राजयक्ष्मा की बीमारी से सन् 1916 में पत्नी चल बसीं। उन्होंने अकेले रहने का मन बना लिया। किन्तु भाभी ने दूसरी शादी केलिए उन्हें मना लिया और सन् 1917 में सरस्वती देवी से शादी की। दूसरी पत्नी भी राजयक्ष्मा रोगग्रस्त हुईं और विवाह के दो साल के अंदर ही चल बसीं। फिर भाभी की प्रेरणा से तीसरी शादी की। कमला देवी के साथ इस वैवाहिक संबन्ध में सन् 1922 में एक बेटा-रतन शंकर प्रसाद – पैदा हुआ। प्रसाद जी भी राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित हुए और 15 नवंबर 1937 को हिन्दी के अमर लेखक प्रसाद जी इस दुनिया से बिदा हो गये।

प्रदास जी का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने प्रमुख साहित्य विधाओं – कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि – को अपने ज्ञान और भावनाओं से बुनी सुन्दर रचनाओं से संपन्न किया। वे 'छायावादी युग' के प्रसिद्ध कवि थे। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम चरण (भारतेन्दु युग) और द्वितीय चरण (द्विवेदी युग) के बाद तृतीय चरण (1920-1936) के काव्य को 'छायावादी युग' कहा गया। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा इस युग के प्रमुख कवि हैं। छायावादी प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास प्रसाद के 'कामायनी' महाकाव्य में परिलक्षित होता है। स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता, अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा, विरहानुभूति के वर्णन में रहस्यवादी भावना, प्रकृति और नारी-सौन्दर्य का वर्णन, लाक्षणिक और प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग आदि छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। प्रसाद की छायावादी काव्य कृतियाँ हैं – झरना (1918), आँसू (1925), लहर (1933),

कामायनी (1935) आदि। प्रसाद के मत में "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश – विदेश की सुन्दरता के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया।"

प्रेम और सौन्दर्य के कवि प्रसाद ने श्रद्धा (कामायनी) के सौन्दर्य का चित्रण इन शब्दों में किया है –

'नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ वन बीच गुलाबी रंग॥'

नारी के गुणों पर प्रकाश डालनेवाली उनकी पंक्तियाँ हैं –

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।"

'कामायनी' में प्रसाद के दार्शनिक विचार में 'शैव दर्शन' के अंतर्गत आनेवाले 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का प्रभाव है। इसे स्वीकार कर मनुष्य अपना जीवन आनंदयम बना सकता है। इसके अंतर्गत नियतिवाद, समरसतावाद, आनंदवाद, सत्यतावाद, अभेदवाद आदि दिखाई पड़ते हैं। प्रसाद के मत में संसार में सब कहीं प्रत्येक प्रदार्थ में शिव की सत्ता विद्यमान है। 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का यह अभेदवादी चिंतन 'कामायनी' महाकाव्य में स्पष्ट होता है। उन्होंने कहा है, जड़–चेतन सब पदार्थों में एक तत्व (परमात्मा) की ही प्रधानता है। जैसे –

'एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।'

'कामायनी' में समरसता का जो सन्देश मिलता है, उसमें भारतीय संस्कृति की भी अभिव्यंजना हुई है –

"औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।"

प्रसाद सफल कवि ही नहीं, सफल नाटककार भी हैं। हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास को जिन तीन कालों में विभाजित किया गया है, उनमें दूसरे काल को हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार प्रसाद का नाम दिया गया है, जैसे – भारतेन्दु युग (1857 – 1900), प्रसाद युग (1900 – 1950) और प्रसादोत्तर युग (1950 के बाद)। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में अतीत के इतिवृत्त में कल्पना का सामंजस्य मिलता है। उनके नाटक हैं – सज्जन (1910), कल्याणी परिणय (1912), प्रायश्चित्त (1912), करुणालय (1913), राज्यश्री (1918), विशाख (1921), अजातशुत्रु (1922), कामना (1927), जनमेजय का नागयज्ञ (1926), स्कन्दगुप्त (1928), एक घूँट (1930), चन्द्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933)। क्षेत्रीय भेदों को मिटाकर देश में राष्ट्रीयता का भाव जगाकर देश को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करे ताकि कोई विदेशी

आक्रान्ता देश को न रौंद डाले, इस उद्देश्य से लिखे नाटक हैं 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त'। अंतिम ऐतिहासिक नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' नारी विषयक भी है और इसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि 'क्या नारी उपहार के रूप में देने की वस्तु है?'

प्रसाद हिन्दी कथा सम्राट प्रेमचन्द के समकालीन कथाकार हैं। प्रसाद के 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इन्द्रजाल' आदि कहानी संकलनों में कुल 69 कहानियाँ संकलित हैं। मूल रूप से कवि होने के कारण उनकी कहानियों की भाषा भी आलंकारिक है।

कथाकार प्रसाद ने कंकाल (1929), तितली (1934) आदि उपन्यासों की भी रचना की। 'इरावती' उपन्यास 15 नवंबर 1937 में अपनी असमय मृत्यु के कारण वे पूरा नहीं कर सके। इसका प्रकाशन सन् 1938 में 'भारती भंडार, इलाहाबाद' ने किया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी हिन्दी लेखक जयशंकर प्रसाद ने संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन किया था। अतः रचनाओं में उनकी भाषा संस्कृतिष्ठ है। छायावादी युग के प्रतिनिधि कवि, भारतीय संस्कृति के उद्गाता लेखक तथा हिन्दी की ऐतिहासिक नाटक परंपरा के बहुचर्चित नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य लोक में अभर रहेंगे।

डॉ.पी.लता
संपादक, शोध सरोवर पत्रिका
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी।

समकालीन संदर्भ में मीडिया का वर्चस्व

◆ डॉ. के श्रीलता

'मीडिया ने अपने अहर्निश उद्यम से जो प्रपंची सइबर जगत बनाया है, उसने यथार्थ की जगह आभासी यथार्थ को स्थापित कर दिया है। इसमें हमारे अनुभवों में, प्रतिक्रियाओं में कई शिफ्टें आई हैं।' सुधीश पचौरी जी का यह निरीक्षण सत्य की निकटतम स्वीकृति है।

बीज शब्द: मीडिया, उत्तराधुनिकता, उत्तराधुनिक संस्कृति।

उत्तराधुनिक समाज एक मीडिया समाज है। आधुनिकता के रूपायन में मीडिया या माध्यमों की अहम भूमिका थी। वह तो मुद्रण (Print) माध्यमों एवं श्रव्य माध्यमों का युग था। पर उत्तराधुनिक माहौल में मीडिया संस्कृति, सूचना-संचार एवं प्रौद्योगिकी के पंख में चढ़कर भावनातीत रफ्तार में आगे-आगे की ओर उड़ान भर रही है। " ज्ञान, धन, हिंसा तीनों मिलकर इक्कीसवीं शताब्दी का दरवाज़ा खटखटा रहे हैं। एक नया विश्व साम्राज्यवाद, विश्व उपनिवेशवाद सामने खड़ा है और यह तीसरी दुनिया के देशों को अपना स्थायी उपनिवेश बनाने की तैयारी में है। क्या यह सच नहीं है कि असीमित परिवर्तन चक्र को मीडिया

एक नई ताकत दे रहा है ? स्थिति यह हो गई है कि प्रचार-माध्यमों ने बाज़ारवाद के नाम पर मानव को ठगने का एक अराजक और पागलपन का रवैया अख्तियार कर लिया है? "[1]

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय समाज एक अनोखे परिवर्तित कालखंड से गुज़रता है। इस संक्रमण-दौर के विखंडित सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ढाँचे को हम उत्तर आधुनिकता की विवक्षा देते हैं। उत्तराधुनिकता का रूप बहुवादी है। अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था, उद्योग, व्यापार, राजनीति, सूचना प्रौद्योगिकी, कला, संस्कृति, साहित्य जैसे विभिन्न क्षेत्रों में पिछले दशकों में घटित इतिहास सापेक्ष एवं भूमण्डलीकृत परिवर्तन का प्रत्यक्ष रूप है उत्तराधुनिकता। उत्तराधुनिक समाज इसकी उपज है। उत्तराधुनिकता विचारों पर निर्भर है, पाश्चात्य सिद्धान्तों से प्रभावित है। इसने विकसित समाज में ही नहीं अविकसित समाज को भी अपनी गिरफ्त में रखा है। नव साम्राज्यवादी देशों के सिद्धांत मानवीय संस्कृति पर हावी हो रहे हैं। भूमण्डलीकृत अवस्था ने राष्ट्र एवं देश-काल की सीमाओं की आधुनिक संकल्पनाओं को दुर्बल बना दिया। उत्तराधुनिकतावादी समाज महाआख्यानकों (Grand Narratives) पर विश्वास रखता है। उत्तराधुनिकतावादी समीक्षा में सौन्दर्यात्मकता से तात्पर्य खोज (invention) से है। यह खोज सत्य की नहीं, सत्य के सारे नियमों को स्थानान्तरित करने की खोज है। आधुनिक समाज मशीनीकृत जीवन-शैली के प्रति शंकाकुल था। गनीमत है उत्तराधुनिक समकालीन समाज यंत्रों को जीवन का अभिन्न अंग मानता है।

वर्तमान समाज एक उपभोक्त बाज़ार है जिसपर अधिकार जमाने केलिए हर मीडिया दौड़ लगाता है। संचार माध्यम प्रिंट हो या इलक्ट्रोनिक ज्ञानवर्धन एवं मनोरंजन के अलावा अन्य कई भूमिकाएँ अदा करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव दिन-प्रतिदिन प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक या साहित्यिक कोई भी पक्ष हो। उत्पादक कंपनियाँ विज्ञापन की सहायता से ही बाज़ार पर कब्ज़ा कर लेती हैं। विज्ञापन अन्धविश्वासों को समुचित विश्वास बना देते हैं। -ईश्वर के कवच या तावीज़ का धारण सब मुश्किलों को भगा देने में सक्षम है– जैसे विज्ञापन केलिए भी अलग-सा चानल हैं। झूठी दवाइयों के यहाँ तक की सेक्सिस्ट दवाइयों के भी मार्केटिंग से मानव की आभ्यन्तर वृत्तियाँ भी समाज के सामने खोली जाती रही हैं।

मीडिया, प्रदर्शन की कला-सृष्टि है। मीडिया सूचना-क्रांति के नये युग की ओर समाज को ले जा रहा है। प्रजातंत्र का चौथा आधार स्तंभ 'मीडिया' अन्य तीनों स्तंभों से भी प्रबल है। सूचना-संचार-माध्यमों की प्रेषणीयता के नैरंतर्य से ही जीवन के सभी क्षेत्र प्रवर्तनोन्मुख हैं। पुराने एवं नव माध्यम खबरों, खोजों और उद्बोधनों से जनता की बोध-बुद्धि में घुसकर उनकी दृष्टि एवं परिप्रेक्ष्य में व्यापक परिवर्तन लाने के लगातार प्रयास में हैं। विविध माध्यम मानव-मन की संचालक शक्ति बनकर समाज में व्याप्त हो रहे हैं। मीडिया संस्कृति को बदल डालने के साथ लोकतांत्रिक दृष्टिकोण एवं विचार और प्रतिक्रिया के रवैये में भी बदलाव लाता है। संप्रेषणशास्त्र के प्रमुख व्याख्याता मार्षल मकलूह ने भी इसे स्पष्ट किया है।

परम्परागत रूप से ऐतिहासिक कहानियों, गीतों का आस्वादन करनेवाली देशी जनता के सम्मुख जब टॉकी (talkie) सिनेमा आई तब दृश्य-संकेतों से विचार-विनिमय एवं कलाविष्कार-शैली को आत्मसात करने के लिए जनमन को तैयार करना पड़ा। बाद में शब्द-प्रपंचों, चटुल चाल-चलनों के व्यापक कानवास में भ्रामक दृश्यों से सिनेमा डिजिटल बन गई तब भी उसी के साथ चलकर भावुकत्व अवस्था तक पहुँचने का सतत प्रयास लोग करते रहे। आज नव माध्यमों द्वारा गगन तले घटित संपूर्ण दृश्य, व्यक्तियों के सभी सरोकार, भूत-वर्तमान के समस्त व्यापार, घर के भीतर घुसकर दिन-रात जनता की बोध-स्थिति में असर डालते रहते हैं और ये प्रज्वलित माध्यम (hot medium) हमारे स्वत्व को शैन: शैन: अशान्त एवं अस्वस्थ बना भी डालते हैं। मानव की चिन्ता-शक्ति को, अवधारणाओं को और विवेचन-क्षमता को बाज़ारीकृत मीडिया ने निस्तेज बना दिया और सत्यासत्य तथा सही-गलत संबन्धित सामाजिक धारणाओं पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया। यह उत्तराधुनिक विकल मनोवृति का प्रमाण दे रहा है।

उत्तराधुनिक संस्कृति की विह्वलताओं को बरकरार रखने में भी मीडिया की भूमिका कम नहीं है। विभिन्न स्क्रीनों से इमेज जन सम्मुख प्रवाहित है। उत्तरवादी.com संस्कृति ने स्क्रीन एवं इमेजों रूपी नया रूपक लोगों के सामने रखा है। वेब जाल, कम्यूनिकेशन साटलैट, केबिल, ट्विटर, ब्लोग, फेसबुक जैसे विभिन्न मीडिया, जिनसे तीन दशक पहले हम बिलकुल अनभिज्ञ थे उनसे जनता ने निकटतम संपर्क स्थापित किया है। यहाँ तक कि सिवाय उनसे मानव जीवन दूभर प्रतीत होने लगा। स्क्रीन संस्कृति इमेजस एवं बैटों (bytes) का निरन्तर प्रवाह है। हैपर लिंकों में एक ही समय बहुविध पाठ भरकर वेबपेजस् समाज को चुनौती देते हैं। सूचना के साथ सूचनाओं की अराजकता का सृजन करनेवाली यह उपयोक्तृ तकनीकी क्रीड़ा ने सांस्कृतिक जीवन को बदल डाला। उत्तरवादी आविष्कारक उपाधियों मीडिया बोध, आख्यान शैली, रूप-भावना आदि के बदलते मूल्य-बोध में स्त्री, परिस्थिति, दलित, आदिवासी जीवन-यथार्थ आदि का आवाजावा होता है। साटिक ओनटोलोजिकल श्रेणियों (Satic ontological categories) को दूर फेंका जाना उत्तरजीवन का तरीका है।

उत्तराधुनिकता की अस्थिरता मीडिया के भी केन्द्र में है। इन दिनों अनुभव केवल प्रादेशीकृत नहीं, भूमण्डलीकृत है, यानी लोकल नहीं, ग्लोबल है। आज कुछ भी यथार्थ नहीं आभास मात्र है या वेरच्युल है। उत्तरवादी समाज द्वारा सृजित संकीर्णताओं, प्रतिबन्धों का आमना-सामना करके उसको संप्रेषित करने का उद्यम मीडिया द्वारा होता है। खंडखंडता, अस्थिरता और चंचलता जो वैश्वीकरण के प्रभाव से है यह स्वभावत: मीडिया का भी है। कुछ दिन टिक जानेवाले अनुभव और अस्थिर होती खबरें | आज की तेज़ रफ्तार में किसी के पास ज़्यादा अवकाश भी नहीं। चानल-चर्चाओं में समस्याओं के उन्मूलन की प्रतिक्रियाएँ नहीं, बल्कि समस्याओं को ज़ारी रखने केलिए न्यूज़ को बरकरार रखकर दर्शकों की संख्या बढ़ाने

केलिए बहसें होती हैं। खबरें, दैनिक, साप्ताहिक या कभी-कभी मासिक होती हैं। उसके बाहर कुछ नहीं। मीडिया का अहर्निश प्रयास इस परिवर्तित ढाँचे को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नया बाना पहनाकर समाज में प्रतिफलित करना है। विश्वग्राम की परिकल्पना, बाज़ारवादी एवं नवउपनिवेशवादी जीवन-स्थितियाँ, संस्कृति का पश्चिमीकरण, उत्तर आधुनिकतावादी सिद्धान्तों से निर्मित बहुवादी संदर्भ, सूचना-तंत्र, अर्थ-तंत्र, संचार-तंत्र आदि सभी बातों से सरोबोर मीडिया संस्कृति व सैबर संस्कृति समाज को अपने विमर्शों से उत्तेजित करती हैं।

समकालीन समाज औद्योगिक युग की निर्मिति है, यह द्रुतगति से परिवर्तित होता रहता है। स्थल-कालबद्ध पुरानी सामाजिक-व्यवस्था, इतिहास और परंपरा गतकाल केलिए मान्य था। भूमण्डलीकरण ने स्थल और काल की दूरी को विनष्ट कर दिया। वह केन्द्रीकृत व्यवस्था को नकारता है, सामाजिक असमानता को तीव्र बना देता है। समाज में जनता नहीं, जाति-धर्म ही केन्द्र में है। जनसमूह जाति/ धर्म/ लिंग/ सवर्ण/ अवर्ण के वर्गों में विघटित है। फलस्वरूप मीडिया की भी कई दृष्टियाँ विकसित होकर सामने आ रही हैं। " मीडिया 'समाज' को 'समाज' के सामने खोलता है। अचानक बने घटनाक्रम को खबर बनाते हुए अपने समाज के जातिगत अनभवों को बहुत से अंडर ग्राउण्ड पहलुओं को सामने लाता है। भूमिगत गुपचुप से चलनेवाली रीति-रिवाज़ जब मीडिया में खुलती है तो अक्सर अपने किये पर वे गर्व करते दिखते हैं और इस तरह वे 'मीडिया करेक्ट'होकर नहीं खेलते। वे अपने समाज को मीडिया पर ढ़ोकर लाते हैं और उसकी हिफाज़त करते हैं। उसको सही ठहराते हैं।"[2] कम बजट में ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफाबाजी में मीडिया यकीन करता है उससे हो रही अराजकता भी एकतरफा नहीं है। टी.वी चानलों के सारे कारनामे 'चानल इम्पाक्ट' केलिए हैं।

शब्द और कर्म की एकता का अभाव, तार्किकता, समग्रता के विरुद्ध विखण्डता उत्तर आधुनिक मीडिया की दृष्टिबिंदु है। दूरदर्शन पर शीतांशु जी का मन्तव्य था "आज संचार माध्यम के हमारे गहन अभिदर्शन के कारण अर्थ अन्तःस्फोटित हुआ है। दूरदर्शन की संस्कृति, यथार्थ युद्ध की जगह युद्ध के अनुकरण को उसके छायांकन को प्रभावी रूप में संप्रेषित करती है। दूरदर्शन ने अधि यथार्थ (Meta - Reality) की अवधारणा प्रस्तुत की है जहाँ जम जिंस के साथ जुड़ जाते हैं। यहाँ विज्ञापन की संरचनाएँ, संकेतकों की क्रीड़ा, इतिहास की चालबाज़ी या छल योजना, समयगत अन्दरों को मिट जाना, उसका विलोपन जिससे गृह आतुरता को अह्लादित किया जा सके, भाषिक और चाक्षुष यमकों का व्यवहार, टुकड़ों, अनुपस्थितियों, प्रतिस्थापकों आदि का व्यवहार आदि उत्तर - आधुनिक माध्यम को उजागर करते हैं।"[3]

यह तो विदित ही है कि प्रथमत: मीडिया का दायित्व एक संदेशवाहक का है। दैनिक कार्य-कलाप जनता तक पहुँचाकर 'इन्फोम्ड सोसाइटी' को रूपायित करने में क्रियात्मक रूप से मुख्य भूमिका अदा करना मीडिया का फर्ज है। घटित बातों को जानने का पूरा अधिकार जनता को है। उसे प्रवृत्ति में लाने का प्रयास करनेवाले विभाग के रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था में हम ने मीडिया केलिए

सबसे प्रमुख स्थान दिया है। जो जनहित बातें हैं उन्हें प्रसारित करना गनीमत है और जो सभ्येतर हैं उन्हें तिरस्कृत करना मीडिया का धर्म है।

आज की बाज़ारवादी, पूँजीवादी या साम्राज्यवादी शक्तियों ने नवउपनिवेशवादी पथ का द्वार हमारे सामने खोल दिया है। इसके विरुद्ध जनता की पोसिटीव मनोवृत्ति के रूपायन में क्या मीडिया सफल हो पा रहा है, यह एक तीखा सवाल है ? कहना न होगा कि आज मीडिया बाज़ारवाद का अधीनत्व स्वीकार करता हुआ मात्र एक व्यापार-केन्द्र हो गया है। यहाँ मीडिया का फर्ज कहाँ संरक्षित होता है ? इस परिवर्तन विधेय युग में सटीक जवाब हो पाएगा ?

"जनामिधर्मम् नचमेप्र वृत्ति
जानाम्य धर्मम् नचमे निवृत्ति"

धर्म की जानकारी रखने पर भी उसे प्रवृत्ति में नहीं ला पाता, अधर्म की समझ होने पर भी उसका पीछा छुड़ा नहीं पाता। यही दशा आज मीडिया की है।

घुमा-फिराकर प्रस्तुत करनेवाली खबरें मीडिया की विश्वसनीयता पर आँच पहुँचा सकती हैं। आज सूचना-प्राप्ति एक अधिकार है तो उसका निषेध भी अपराध हो जाता है। मीडिया ने अपने प्रथम धर्म के रूप में मनोरंजन को ले लिया है। व्यंग्य-विनोद में ज़्यादा 'किक्' डालने केलिए अनियंत्रित नशा रखने में चानलें आपस में लड़ते हैं। वे राजनीति को प्रमुख कोमोडिटी बनाकर सूचना क्रान्ति का उत्सव मना रहे हैं।

मीडिया पर विचार उठते ही यह सवाल भी उठता है कि मिडिया पर क्या कोई अंकुश लगा सकता है ? प्रामाणिक खबरें कैसे पहचान ली जा सकती हैं ? मानव-मन को मुट्ठी में रखने को, समाज के चाल-चलन और विश्वासों को प्रबल एवं चपल बनाने में सक्षम सूचना क्रान्ति को मिसइन्फोर्मेशन, डिसइन्फोर्मेशन, कॉउंटर इन्फोर्मेशन जैसे परस्पर विरुद्ध ध्रुवों में गलतफहमी फैलानेवाली मोहरे बना देती हैं, साम्राज्यविरुद्ध शक्तियाँ। फासिस्ट एवं सांप्रदायिकतावादी इस पर ऐडियोलजी बना रहे हैं। दादागिरी, मुनाफाखोरी, परस्पर विद्वेष आदि ने सूचना वितरण की तटस्थता में गरल मिला दिया है।

राजनीतिक गुटबाज़ियों और औद्योगिक ब्रान्ड कंपनियों के चंगुल में पड़कर मीडिया अपने दायित्व से दूर भागता है। अवैज्ञानिक-सांस्कृतिक धारणाओं एवं अन्धविश्वासों से जनता को मुक्त कराने के बजाय उन्हें चमचमाती बाहरी दुनिया की अफीम देकर सुला रहे हैं। आम जनता को क्या पहनना है, क्या खाना है, क्या करना है इसकी चर्चा खुला बाज़ार करता है। इसका निर्णय- Agenda setting- भी बाज़ार करता है। सत्य जानने के उद्वेग को अदृश्य रूप से नियंत्रित करके उसके जानने योग्य बातों को तम मिश्र बनानेवाले स्टाटसको की इच्छा रखनेवाले मीडिया-सम्राट ही हैं।

सामाजिक संस्कारों एवं जनपक्षों में सामंजस्य लाने केलिए मीडिया का सशक्त विकास आवश्यक है। अमर्त्यसेन, मकबूल हक जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किए गए यू.एन. ह्यूमन डेवलेपमेन्ट रिपोर्ट में मानव-जीवन के स्थायी स्थिर विकास केलिए सूचना-संचार तंत्र के महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख है। उन्होंने व्यक्त किया है कि संपूर्ण साक्षरता-अभियान,

स्वास्थ्य-सुरक्षा और सांस्कृतिक-स्वतंत्रता को हासिल कराने में मीडिया का दायित्व महत्वपूर्ण है। मीडिया ईमानदार, तटस्थ एवं पारदर्शी हो। श्रोता, पाठक, दर्शक, ग्राहक या उपभोक्ता को ध्यान में रखकर वैश्विक संदर्भ की तहतही खबरें तैयार करनी हैं। सुधीश पचौरी के मत में "मीडिया के तमाम तंतुओं को गूँथकर निहित समस्याओं को मनोरंजक, सांस्कृतिक विमर्श का हिस्सा बनाना होगा। सरकार को भी कल्चरल थ्रस्ट के क्षेत्र बनाने होंगे।"[4]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण, निजीकरण, बाज़ारीकरण एवं उदारीकरण के युग में मीडिया जैसे सशक्त लोकतांत्रिक हिस्से को पारिभाषित करना दुष्कर ज़रूर है। देह विज्ञापनों की अश्लीलता पर निगरानी आवश्यक है। साथ ही मीडिया के स्वामित्व को लेकर हो रही तमाम समस्याओं पर भी गौर करना होगा। गनीमत है मीडिया पर सरकारी, व्यावसायिक, धार्मिक तथा सांप्रदायिक दबाव व आक्रमण तो हैं, उन्हें झेलकर जनपक्ष में खड़े होना मीडिया का दायित्व है।

सन्दर्भ :

1. कृष्णदत्त पालीवाल, उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य, पृ.14, वाणी प्रकाशन,2020।
2. सुधीश पचौरी, मीडिया - समकालीन सांस्कृतिक विमर्श, पृ.300
3. शशिभूषण शीतांशु, उत्तर आधुनिकता बहु आयामी संदर्भ, पृ.289, लोक भारती प्रकाशन, 2010।
4. सुधीश पचौरी, मीडिया : समकालीन सांस्कृतिक विमर्श, पृ.302

◆ प्रोफसर एवं अध्यक्षा
हिंदी विभाग
श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय
कालडी, केरल राज्य।
संपर्क : 9497273927

'ललितादित्य' उपन्यास – एक परिचयात्मक दृष्टि

◆डॉ.षीबा शरत.एस

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ.वृन्दावनलाल वर्मा जी का कालजयी ऐतिहासिक उपन्यास है 'ललितादित्य'। इसमें कश्मीरी नरेश ललितादित्य का चरित्र एवं दिग्विजय की गाथा बताई गयी है।

बीज शब्द : कश्मीर, दिग्विजय, सामंत, अधिवेशन।

उपन्यास की शुरुआत में वर्मा जी ने कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि आदियुग में संपूर्ण क्षेत्र दलदल था, इसे शतिसर कहते थे। महान कश्यप ऋषि ने अपने तप से इस दलदल को सुखा दिया। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम कश्यप कहलाया, जिसे आज हम कश्मीर कहते हैं। कोंसरनाग पर्वत,

रमेशतुंग, नंगा पर्वत, पीरपांजाल पर्वत, कारकोरम पर्वत, महापद्मा झील (वूलर झील) आदि भौगोलिक स्थानों का चित्रण वर्माजी ने शुरू में किया है।

कश्मीर के राजा अपने को कर्कोटक नागवंशी कहते हैं। कथा के शुरू में कश्मीर के राजा ललितादित्य दिग्विजयी बनकर, भारत का सम्राट होकर लौट रहे हैं। इनका पितामह दुर्लभवर्द्धन कायस्थ राजा बालादित्य के घुड़साल का अधिकारी मात्र था। राजा ने उसे दामाद बना दिया और अपने ससुर के मृत्यूपरान्त वे राजा बने। ललितादित्य का नाम पहले मुक्तापीड़ था। नाम के साथ पीड़ जोड़ने की परंपरा के कारण उनके बेटों का नाम कुवलयापीड़ और मुक्तापीड़ हैं। पत्नी का नाम कमलावती है। ललितादित्य के नौ सौ वर्ष पहले सम्राट अशोक मौर्य जीवित थे। अब राजा ललितादित्य ने कान्यकुब्ज के यशोवर्मन को परास्तकर अंग, बंग, कोशल, आंध्र, सातों कोंकण, अवंति, सौराष्ट्र, कर्नाट, कामरूप आदि देशों को एकसूत्र में बाँधा। सात वर्ष बाहर रहकर अब वे श्रीनगर पर लौट आए हैं। अपने साथ यशोवर्मन की राजसभा के विख्यात महाकवि भवभूति को भी लाए हैं।

ललितादित्य की सेना में कई डामर सामंत हैं। लोग मानते हैं कि राजा प्रबल होने के कारण उनकी आज्ञा से पहाड़ तक झुक जाते हैं। उनके प्रधानमंत्री का नाम मित्रशर्मा है। उस युग में कश्मीर में बड़े सेठ को महाश्रेष्ठी कहते थे और बहुत भूमिवाले को महाशाल भी। वैसे उनके महल में महाश्रेष्ठी इन्द्रपाल, महाशाल धनंजय और भल्लुक शामिल थे। तक्षशिला के रावल वत्तुल, डामर छत्रजीत भी वहाँ थे। उनकी सेना में बहुत डामर सामंत हैं। राजा ने कान्यकुब्ज से करोड़ों का सोना, चाँदी और मणिमुक्ता ले आए हैं। राजमहल में आए राजा को महारानी कमलावती और अन्य सदस्यों ने विधिवत् स्वागत किया।

अगले दिन के अधिवेशन में महामंत्री मित्रशर्मा ने राजा के सामने अनेक समस्याएँ पेश किया। एक-एक करके राजा ने सभी समस्याओं को सुलझाने का यत्न किया। मंत्रिमंड़ल के इन्द्रपाल, धनंजय और भल्लुक ने अपने-अपने गाँव की सिंचाई के साधनों की कमी के बारे में राजा को सूचनाएँ दीं। राजा ने उन्हें आश्वासन दिलवाकर कहा कि वे तुरंत ही इन साधनों की पूर्ति का प्रबन्ध करवायेंगे। मित्रशर्मा ने आगे कहा कि तुक्कर मंत्री चंकुण चीन देश की राजधानी गए थे, अपने कश्मीर और चीन देश के बीच में मित्रता स्थापित करना उनका उद्देश्य रहा था। अब वे रोगग्रस्त होकर लौटे हैं और राजवैद्य ईशानचंद्र की देखभाल में हैं। क्योंकि चीन नरेश ने भरी सभा में चंकुण से चीन देश की प्रथा काऊताऊ नीति को बरतने केलिए कहा। लेकिन चंकुण ने यह नहीं माना। यह काऊताऊ नीति चीन देश की राजनीति की बड़ी निंदनीय प्रथा है। इसके अनुसार चीन नरेश के सामने तीन बार झुककर प्रणाम कर फिर नौ बार साष्टांग प्रणाम भी करना है। सुनकर राजा ललितादित्य ने कहा कि कान्यकुब्ज की राजसभा में चीन का दूत आया। राजदूत का नाम वांगहुनत्से था। कान्यकुब्ज के सभावालों ने उस दूत से काऊताऊ बरतने के लिए कहा। उसने तीन बार सिर झुकाकर प्रणाम किया। लेकिन नौ बार साष्टांग प्रणाम करने से नाहीं कर दी। यशोवर्मन को क्रोध आया और भरी सभा में दूत को पिटवा दिया। इसके

परिणामस्वरूप चीन ने तिब्बत नरेश थुइंगवस्तु से मगध पर आक्रमण करवा दिया। यशोवर्मन उसका सामना करने में असमर्थ होने के कारण ललितादित्य ने उसकी सहायता की। यशोवर्मन ने कृतज्ञता के स्थान पर शत्रुता प्रकट की। मित्रशर्मा ने सभा में कहा कि महाराज ने चीन को ऐसे हराया कि अनंत काल तक इतिहास में अंकित रहेगा। अब यहाँ चीन का संधिपत्र आया है। तुष्कर चीन साम्राज्य की सीमा से लगा हुआ है। चीन नरेश ने यह भी कहा कि कश्मीर चीन देश के अधीन में है। इसलिए वे यहाँ पर आक्रमण करने की सोच में हैं। तुरंत महाराज ललितादित्य ने कहा कि वे कल ही चीन नरेश को दंड़ देने के लिए निकल पड़ेंगे। तब मित्रशर्मा ने राजा से कहा कि लगभग सात वर्ष तक उनकी अनुपस्थिति में यहाँ पर हुई समस्याओं पर ध्यान देना ज़रूरी है। राजा को पहले अपनी प्रजा के पालन और हित की समस्याओं पर विचार करके योजनाओं को कार्यान्वित करना चाहिए। सिन्धु देश के राजा दाहिर ने राजा की अधीनता को स्वीकार कर लिया है। राजा ने उस समय विख्यात शिल्पी श्रीकंठ द्वारा बनाए गए मंदिर का नाम मार्तंड़ेश्वर रखा। कान्यकुब्ज का नरेश यशोवर्मन ने राजा को संधिपत्र भेजा है। उसने कश्मीर की अधीनता स्वीकार कर वचन दिया है कि आवश्यकता पड़ने पर महाराज की सेवा में अपने पूरे बल के साथ उपस्थित होंगे। राजा ने कहा कि उनकी अनुपस्थिति में मित्रशर्मा राज्य को संभालता है और सँभालता रहेगा। इसलिए राजा ने उसे पाँच उपाधियों से विभूषित किया। मिश्रशर्मा ने राजा से कहा कि तुष्कर का शासक मुम्मुनी सिर उठा रहा है। तिब्बत नरेश थुइंगवस्तु चीन के साथ षड्यंत्र रचकर आक्रमण करेगा। मंत्री ने यह भी कहा कि कश्मीर में नदियाँ हैं, झीलें हैं और बहुत सी भूमि उपजाऊ है, परन्तु कहीं सिंचाई की सुविधा नहीं। तब इंद्रपाल, धनंजय, छत्रजीत सबने मिलकर कहा कि सिंचाई की सुविधा करवाने की बड़ी आवश्यकता है। छत्रजीत ने राजा से यह भी कहा कि वर्षों बाहर रहने के कारण खेती बिगड़ रही है और इसलिए वे लोग भविष्य में यहीं पर रहना चाहते हैं। तब राजा ने क्रुद्ध होकर कहा कि – "तुम सब क्षत्रिय हो। क्षत्रिय का धर्म तलवार उठाये रहने का है। तुम्हारी बातों से तो प्रकट हो ही रहा है और मैं ने सुन भी रखा है कि तुममें से कुछ रणक्षेत्र से विरक्त हो रहे हो।"[1] वीर-शूर होने के कारण राजा का क्षत्रिय धर्म जाग उठा। लेकिन तुरंत ही उन्होंने स्थिति को सँभालकर कहा कि – "सिंचाई के साधनों इत्यादि पर अवश्य ध्यान दिया जाएगा। राष्ट्र अपने शस्त्रों से सुरक्षित है। नहर खुदवाने – बनवाने और पुलों के निर्माण का कार्य रणक्षेत्र के कार्य से कुछ अधिक कठिन है;क्योंकि समय चाहता है। इसे भी कराऊँगा।"[2] राजा अधिवेशन के बाद चंकुण को देखने के लिए उसके कक्ष में गये।

महारानी कमलावती के कई दासियाँ थीं। उनमें चक्रमर्दिका नामक दासी से उनके निकट का संपर्क था। रनिवास में संगीत – नृत्य का समारोह चलता था। तुष्ट होकर राजा ने दासी चक्रमर्दिका को अपनी कलाई से चूड़ा उतारकर दिया। राजा ने सुरवर्धमान गाँव की लड़कियों के इच्छानुसार परिहासेश्वर केशव मंदिर बनवाया। श्रमिक वर्ग के लिए उन्होंने मंदिर के निकट परिहासपुर नगर भी बनवाया। मार्तांड़ मंदिर, चर्केश्वर महादेव मंदिर चक्रमर्दिका के नाम पर चक्रपुर नगर एवं

महारानी कमलावती के लिए कमलेश्वर मंदिर भी बनवाये।

तक्षशिला के रावुल वत्तुल और छत्रजीत में दोस्ती थी। सात-आठ वर्ष पहले वत्तुल तक्षशिला का स्वतंत्र राजा था। ललितादित्य ने उसे हराकर राजा से रावल बनाया। छत्रजीत डामर था। वे अपने को क्षत्रिय समझते थे। लेकिन कश्मीर की अन्य ऊँची जातियों के लोग उन्हें नीची श्रेणी के मानते थे। वीर डामरों को अपनी भूमि राजा से भी प्यारा है। राजा ने गौड़ नरेश नंदन को बंदी बनाकर त्रिगामी नामक स्थान में कैद रखा। अगर वह भरी सभा में आकर नतमस्तक हो तो उसे क्षमा मिल जाएगी। राजा ने उसे अपनी निगरानी में एक विशाल भवन में रखा था। वह पूजा के लिए शंकर मंदिर में जाया करता था। श्रीनगर के पार्श्व में लगभग पाँच सौ हाथ की ऊँचाई के पर्वत पर शंकर मंदिर था। इसे शंकराचार्य का मठ भी कहते हैं। स्वामी शंकराचार्य बौद्धमत के दमन केलिए यहाँ आकर रहे थे। विक्रम से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सम्राट अशोक के पुत्र जलौक ने इस पर्वत पर एक मंदिर बनवाया था। मंदिर टूट-फूट गया। फिर से वहाँ विक्रम की छठी शताब्दी में तत्कालीन कश्मीर नरेश ने मंदिर खड़ा किया। मंदिर में शैव और तांत्रिक मत के लोग थे। उस युग में कश्मीर में तांत्रिक मत ज़ोर था। उसके दो दल थे – वाममार्गी और कौलपंथी। कौलपंथी माँस – मदिरा से दूर थे। वाममार्गो साधनों द्वारा योगबल प्राप्ति के विश्वासी थे। नंदन तंत्रमार्गी था। उसे ऐसा विश्वास था कि तंत्र – मंत्र और पूजा द्वारा किसी दिन वह अपने राज्य को प्राप्त करेगा। शंकर मंदिर में तक्षशिला के राजा वत्तुल और डामर सामंत छत्रजीत से उसका परिचय हो गया। वत्तुल ने महारानी कमलावती की सखी चक्रमर्दिका को भेंट स्वरूप नंदन को देने का वादा करके उसके दिल के पास आया।

राजा के पीछे एक षड्यंत्र चलता है। जब ललितादित्य पादमेरू में होंगे, तब नंदन चक्रमर्दिका को लेकर कश्मीर से चला जाना चाहता है। तीस सहस्त्र अश्वारोहियों के साथ पादमेरु की यात्रा में चल पड़े राजा के पास उचित समय पर चक्रमर्दिका का पत्र आता है। उसे इस षड्यंत्र के बारे में पूरी जानकारी है। उसके पत्र में नंदन और वत्तुल की दोस्ती की बात और पादमेरु पर्वतमाला में राजा को विपथ कर नष्ट करने की बातें थीं। राजा जल्दी ही वापस आए। मंत्री मित्रशर्मा ने भी षड्यंत्र की बातें उनसे बता दी थीं। अब राजा तुक्कर देश के मुम्मुनी पर आक्रमण करना चाहते हैं। एक बार श्रीनगर से एक कोस दूरी पर चलते राजा पर एक तीर आ टपका। तीर राजा के बगैर उनके घोड़े की पीठ पर लगा। निज स्थिति खोजने के लिए चल पड़े भल्लुक को पता चला कि इसके पीछे नंदन का हाथ है।

राजा हिन्दुकुश पर्वतावली से होकर तुक्कर पहुँच गए हैं। मुम्मुनी चीन का प्रोत्साहन एवं सहयोग से युद्ध की तैयारी करता है। वत्तुल ने नंदन को थोड़ा – सा विष पिला – पिलाकर मरवा दिया। नंदन की मृत्यु के प्रतिशोध में कुछ साधु वेशधारी श्रीनगर के परिहासेश्वर केशव मंदिर की मूर्ति को टुकड़े – टुकड़े करते हैं।

राज्य में हलचल करते डामरों के मुखिया को राजा ने बुलवाकर उन लोगों को सेना में भर्ती होने की बात की। यह बात मुखिया इन्कार करता है तो राजा ने उन्हें प्राणदंड देने की सज़ा दी। बाकी को बंदीगृह में डाल दिया गया। उस रात नींद में एक साधु से

भेंट करने का दृश्य सामने आया। राजा ने प्राणदंड़ को कम करके मुखिया को बंदीगृह में डालना उचित समझा। तब तक राजाज्ञा का पालन हो चुका था। राजा व्याकुलता से पछताने लगे। खूब मदिरा पीकर अबोध हो गए। राजवैद्य ईशानचंद्र के उपचार से वे ठीक हो गये और उसी दिन से मदिरा न पीने का प्रण किया। डामरों की एक मुखिया ने आकर मरे हुए डामर की बुरी आदत पर राजा से माँफी माँगी और कहा कि आवश्यकता पड़ने पर जवानों को सेना में भरती कराएगा।

उसीप्रकार परिहासेश्वर मंदिर के मूर्तिभंजन की बात जानकर अनेक स्त्रियों ने इकट्ठे होकर राजा से कहा कि अपने महाराज के लिए प्राण देने को वे तैयार हैं। देश की रखवाली केलिए तलवार उठाने के लिए वे आगे बढ़ेंगी। हर्ष से ललितादित्य फूला न समाया और उन स्त्रियों से कहा कि – "तुम सब हमारी भुजाओं की शक्ति हो, परमप्रभु भगवान की कृपा से यह शक्ति सुरक्षित रहेगी। तुम सब हमारी बहनें हों। हमें तुम्हारा बहुत अभिमान है। तुम सबके असीम प्रेम और भगवान की दया से हम अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। घर जाकर सबको प्रोत्साहित करती रहो।"[3] तब स्त्रियाँ राजा का जय-जयकार करके घर चलीं।

चंकुण के मार्ग-निर्देशन पर राजा ने अभियान यात्रा शुरू की। उन्होंने मार्ग में पड़े एक घायल आदमी का उपचार किया। वह घायल रेगिस्तान के एक निकटवर्ती राजा का मंत्री है। अपनी सेना को पानी देने के लिए राजा ने रेगिस्तान की एक नाली से पानी निकलवाया। ललितादित्य की सेना के सामने चीनी सेना हताहत हुई। इस युद्ध में अनेक बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष मारे गए। इसकी रक्तधारा ने राजा को युद्ध से घृणित किया और उसके मन में करुणा का भाव आ गया। उन्होंने अपने मन को युद्ध से मुक्त करना चाहा। इस घटना के कुछ दिन पूर्व एक बार राजा तुक्कर देश की ओर जाते वक्त एक साधु से मिले। उन्होंने राजा से उनके पूर्वजन्म के बारे में बताया। राजा पूर्वजन्म में एक समृद्ध गृहस्थ के नौकर थे और वे अपने स्वामी के खेतों पर हल जोतकर जीवन – यापन करते थे। वहाँ गृहस्थ उनके लिए रोटी – पानी किसी के हाथ में ले जाया करता था। एक दिन काम करते उनका गला सूख गया। भोजन लानेवाले इस बार एक छोटा-सा घड़ा पानी और एक मोटी रोटी लाए। खाने के लिए तैयार हुए उनके पास एक भूखे – प्यासे ब्राह्मण ने आकर भोजन माँगा। भोजन लाए व्यक्ति के रोकने पर भी उसने ब्राह्मण को आधी रोटी और भरपेट पानी दिये। इसप्रकार राजा को अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाने के बाद साधु ने उनसे कहा कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर सुर और असुर बसते हैं। जिसके मन में, अंत में सुर विजयी बनता है वह बाद में योगी बन जाएगा। इस घटना के बाद राजा के मन में एक प्रकार के प्रत्येक आनंद का अनुभव होने लगा।

ललितादित्य अपनी सेना के साथ चंकुण के यहाँ पहुँचे। चंकुण ने युद्ध में विजयी राजा के स्वागत – समारोह के लिए योजना बनायी थी। राजा ने सोचा कि रक्त की नदी बहाकर आनेवाले का स्वागत समारोह पापकर्म है। उनका मन विरक्त हो गया। दूसरे दिन उन्होंने वत्तुल को उसका अपराध बतलाकर चंकुण का बंदी बना दिया। उन्होंने भोजपत्र पर अपना संदेश लिखकर श्रीनगर भिजवाने का निश्चय

किया। संदेश यह था – "राजा मर जाए या सन्यास ले ले तो उसके लिए कदापि शोक-पीड़ित नहीं होना चाहिए। राजा को अहंकारी नहीं होना चाहिए, अहंकार सब पापों की जड़ है। उसे पूरा आत्मसंयमी होना चाहिए। राजा अपना समय प्रजा के हित में लगावे, प्रजाजन परस्पर खटपट न करें, फूट से देश का विनाश होता है।"[4] यह संदेश भेजने के पहले उन्होंने अपने सामंतों से कहा – "मैंने पर्याप्त समय तक राज्य कर लिया है, अनेक विजय प्राप्त कीं। अब अपने भीतरवाले शत्रु पर विजय प्राप्त करनी है। आज से, अभी से सन्यास लेता हूँ। जाता हूँ इन जंगलों में जिनके फूल योगियों के चरणों में अपना समर्पण करते हैं। मुझे योगियों के दर्शन अवश्य मिलेंगे और मेरी आत्मा उनके आशीर्वाद से आलोक को प्राप्त करेगी।"[5] इतना कहकर वे तुरंत अपनी राजकीय वेशभूषा अलग कर थोड़े से वस्त्र पहनकर चले। चलते वक्त कहा कि मेरा पीछा कोई न करे। अगर करे तो मैं आत्मदाह कर डालूँगा। सेनानायक और सामंत हाहाकार करने लगे। राजा एक कौपीन पहनकर जंगल की ओर चले गए। एक दो घंटे बाद जंगल में आग लग गई। लोग चिल्लाने लगे। भोर होने पर लोग उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ आग लगी हुई थी। लेकिन वहाँ सिर्फ अस्थियाँ और भस्म ही मिले। कुछ लोगों का अनुमान है कि महाराज योगी हो गए हैं। इसके साथ कथा का अंत होता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कश्मीर का पूर्व चरित्र एवं ऐतिहासिकता को ललितादित्य के माध्यम से उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्माजी हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। यह महान राजा हमारे दिल में हमेशा सम्मानित रहेगा।

संदर्भ

1. ललितादित्य – वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ.सं. 29
2. वही, पृ.सं. 29
3. वही, पृ.सं. 206
4. वही, पृ.सं. 223
5. वही, पृ.सं. 224

◆ प्रोफसर, हिन्दी विभाग
यूनिवेर्सिटि कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम
केरल।
मो:9447743225

रामविलास शर्मा की कविता में जनता का ऐतिहासिक उत्खनन

◆ मधु वासुदेवन

रामविलास शर्मा अपनी धारदार, प्रहारात्मक एवं स्पष्टवादी आलोचना के कारण हिन्दी भाषा-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होंने प्रगतिवादी विचारधारा के आधार पर हिंदी साहित्य की समीक्षा करते हुए हिंदी आलोचना को लोक परंपरा से जोड़ दिया। कम लोग जानते थे कि रामविलास शर्मा

शास्त्रीय संगीत के प्रकांड पंडित थे, हिन्दुतानी गायक थे, कुश्ती लड़ते थे, और पहलवानी भी करते थे जिनका प्रतिबिंब उनकी आलोचना पद्धति में दिखाई देता है। रामविलास शर्मा ने हिंदी साहित्य का विधिवत् इतिहास तो नहीं लिखा है। लेकिन हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन को लेकर उन्होंने अनेक लेख लिखे हैं और विचारोत्तेजक निर्णयों पर पहुँच गए हैं जिनकी आधारशिला पर हिंदी का नया साहित्य खड़ा है। कविता रामविलास के लिए प्रियतम साहित्य विधा रही है। मैनेजर पांडेय के अनुसार "यद्यपि अपनी आलोकित आलोचना की तुलना में कविता को व्यापक स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई है, फिर भी हिंदी साहित्य के विस्तृत इतिहास में रामविलास की कविता हस्तक्षेपकारी पहचान रखती है।"[1] कविता की तरफ उनका आकर्षण इतना था कि नई कविता पर उन्होंने एक आलोचनात्मक ग्रंथ तक लिखा है। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसी, शेक्सपियर, निराला आदि पर भी उनके लेख प्रकाशित हुए हैं। उनकी सजग काव्योत्सुकता का यही प्रमाण दिखाई देता है।

रामविलास शर्मा ने अपने जीवनकाल में दो सौ से अधिक कविताएं लिखी हैं। 'कविता में सुबह' रामविलास शर्मा का पहला काव्य संग्रह है। इस संकलन की कविताओं में प्रकृति और मानव के रूमानी संबंधों का चित्रण हुआ है।

प्रकृति का अविच्छिन्न संबंध रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व में रूढमूल है। मनोभावों को रूपात्मक बनाने की कला का परिचय उनकी कविता में प्राप्त है। उसमें प्रकृति के स्वरूप को अनुभवात्मक स्तर पर प्रेषित करने की क्षमता प्रकट है। यद्यपि उनकी कविता कोरे अनुभवों की निर्मिति नहीं बनी है, फिर भी जीवन के संवेदन मूल्यों से वह बड़ी प्रेरणा हासिल करती है।[2] अवध के प्राकृति सौंदर्य का वर्णन करते समय उनकी दृष्टि वहाँ की लोक संस्कृति पर भी पड़ती है। फलत: कविता वर्णव्यवस्था की अमानवीयता और आर्थिक दुर्व्यवस्था की आलोचना बन जाती है। रामविलास शर्मा की कवि चेतना प्रगतिवादी काव्यधारा से पर्याप्त प्रभाव लेती थी। प्रगतिशील मूल्यों को प्रतिबिंबित करने का सहज आग्रह उनकी कविता में प्रकट होता था, जिसका आधार अवश्य मार्क्सवादी दर्शन का गहरा परिचय माना जा सकता है। उनके मत में मार्क्सवाद वैज्ञानिक विचारधारा है और प्रगतिवाद मानववादी साहित्यधारा। मार्क्सवादी दर्शन से व्यापक रूप में प्रभावित होने के नाते प्रगतिशील साहित्य का मानववाद मुख्यतः वैज्ञानिक और समाजवादी मानववाद है। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र की विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत सौन्दर्य को एकद्वन्द्वात्मक दृष्टि से देखा जाता है जिसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वस्तु को एक विशेष सत्ता या वस्तु के रूप में न देखकर वस्तु के अंतःसम्बन्धों तथा अन्तर्विरोधों के रूप में जाँचा-परखा जाता है।[3] रामविलास शर्मा का काव्य-चिंतन इस तत्व का समुचित विस्तार देता है।

कविता के प्रवृत्तिगत अध्ययन के आधार पर आलोचक रामविलास शर्मा को नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल का मधुर मिश्रण मानते हैं।[4] उनके सामान रामविलास शर्मा ने भी प्रकृति के जीवन-सन्दर्भ को चुन लिया है।

'बादल' रामविलास शर्मा का सबसे प्रचलित एवं सार्थक बिंब है, जिसके माध्यम से वे जीवन के अनेक दृश्य पेश करते हैं । उनके दृष्टिपथ में बादल रसायन की तलाश में घूमता-फिरता है जिससे नफरत का लावा ठंडा कर सकता है। स्त्रियों की आँखों में उमड़नेवाले आँसुओं के रूप में भी वे बादल को देखते हैं। विचारणीय है कि शतियों से भारतीय कवियों द्वारा निर्मित बादल की परिकल्पना को रामविलास शर्मा ने परिवर्तित किया । 'इसका मूल और मुख्य कारण यह है कि उनकी कारयित्री प्रतिभा प्रगतिवाद के ढाँचे में ढली हुई है। अपने को आम जनता से जोड़ देने की सहज जिज्ञासा उनके कविकर्म को नया आयाम दे देता है।' [5] उनकी कविता का रचनात्मक स्वभाव यह है कि वह एक विशिष्ट यथार्थबोध के आधार पर अतीत को पुनर्मूल्यांकित करती है।

ज़मीन से चिपटा रहने की परंपरागत प्रवृत्ति से वे कभी बचे हुए नहीं थे। उनका 'बादल' ऐसा एक संकलन है जो प्राकृतिक बिंबावली से निर्मित है। उसमें जीवन के बहुविध दृश्यानुभवों का चित्रण कलात्मक शैली में किया गया है। उदाहरणस्वरूप 'निहाई पर रखे लाल सुर्ख' दहकते लोहे का बिंब है। 'वसंत की दोपहर' भी खेतिहर मज़दूरों के औज़ार हँसिये पर धार चढाती हुई ही रूपायित होती है। उनकी कविता में जनपदीय चिंता मुद्रित हुई है और खेत उनके लिए बगीचों से भी बेहतर दृश्य हैं। धान उनको फूलों से भी कोमल प्रतीत होता है। फूलों की खुशबू से बढ़कर जोते हुए खेत से उठती गंध को वे महत्त्व देते हैं और उसका गहरा आस्वादन करते हैं। इस तरह शोषण तथा अनाचार के चक्र में पिसती जनता के प्रति हार्दिक व्यथा तथा संवेदनाएँ राम विलास शर्मा ने प्रकट की हैं। यद्यपि वैयक्तिक स्तर पर भी उन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं, फिरभी अभिव्यक्ति के नये प्रकारों तथा रूपाकारों के नये प्रयोगों को लेते हुए उन्होंने प्रगतिवादी कविता की अनेक सम्भावनाओं के प्रति लोगों को आकृष्ट तथा आश्वस्त किया है।'[6] इस दृष्टि से रामविलास शर्मा, त्रिलोचन की परंपरा के कवि साबित हो जाते हैं।

'समय को शब्द दो' रामविलास शर्मा का प्रतिनिधि काव्य संकलन है। इसकी कविताएँ समय-मापिनी के रूप में पाठक के सामने आती हैं। इस संकलन की अधिकतर कविताएँ राजनीतिक चेतना से ओतप्रोत हैं और प्रतिबद्ध कविता का प्रखर चेहरा इसमें देख सकते हैं। अपनी राजनीतिक पक्षधरता को घोषित करनेवाली इन कविताओं के द्वारा रामविलास शर्मा अधिकाधिक समकालीन हो जाते हैं। आहिस्ता उनकी कविता समकालीनता का रूप धारण कर लेती है। पक्षहीनता के छद्म नाटक समाप्त करने का आह्वान देनेवाली कविता, पक्षधर होने की सांस्कृतिक अनिवार्यता पर ज़ोर देती है, जिसका दृष्टांत है लेनिन पर लिखी गई कविता। इधर प्रगतिशीलता की अपार ऊर्जा ग्रहण करते हुए परंपरावादी मान्यताओं को तोड़-फोड़कर कविता अग्रसर होती है। एक प्रश्निल मुद्रा में शुरू होनेवाली कविता की संवेदनशीलता बिल्कुल सराहनीय है। कवि सवाल उठाते हैं कि धरती आखिर कांपती क्यों है? कविता 'भूकंप क्यों आता है?' में पुरानी पीढ़ी और आधुनिक पीढ़ी के बीच गंभीर संवाद आरंभ होता है, बहस चलती है।

अवैज्ञानिक एवं पौराणिक आस्थाओं का खुला खंडन होता है। विष्णु, शेषनाग, लक्ष्मीदेवी आदि के छद्म नाटक असंभव बन जाते हैं और असंगत पौराणिक संदर्भ छूट जाते हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार विष्णु पूँजीवादी सत्ता हैं और लक्ष्मी यथासंभव पूँजी बन बैठी हैं।

रामविलास शर्मा की कविता पुराण, इतिहास, भूगोलविज्ञान, राजनीतिक तत्व, राजनीतिक तत्व, दार्शनिक विचारधारा आदि के समग्र ज्ञान से रूपायित है। वह बिलकुल अपने परिवेश की सहज उपज है जो संवाद के सुखद अनुभवों से होकर गुज़रती है। रामविलास शर्मा परिवेश को अपनी कविता में पूरी तरह संवारते हैं। भावसंवेदन के साथ कल्पनाशीलता, बौद्धिक उन्मेष एवं विचारपरता के उचित संयोग से उनकी कविता अवतार लेती है। बातचीत की सहजता उनकी कविता की संवेदनात्मकता को गतिशीलता प्रदान करती है। समाज में ऐसी कोई चीज़ बची नहीं है जिससे उनकी कविता प्रेरित न हो। क्रान्ति तथा जनोद्बोधन के संसदीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिजों का स्पर्श करनेवाले प्रखर स्वर भी उनकी कविताओं में हैं।[7] अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करने की क्षमता उनकी कविता को विशिष्ट सौंदर्य प्रदान करती है। सांस्कृतिक संकट के व्यापक परिप्रेक्ष में वह सामाजिक सरोकार के नए स्तरों का परिचय कराती है और कठिन काल में जीने की कला सिखाने के बहाने सृजनधर्मिता के वैश्विक सन्दर्भ की याद दिलाती है।

'रूपतरंग' रामविलास शर्मा के साहित्यिक जीवन के आरंभिक चरण में प्रकाशित काव्य संकलन है। इस पुस्तक की प्रथम कविता महाप्राण निराला को लेकर लिखी गई है। बात उल्लेखनीय है कि अपनी रचनात्मक दृष्टि को स्वरूपित करने में जिस कवि ने रामविलास शर्मा को प्रेरणा प्रदान की थी, वही व्यक्ति ही उनकी पहली कविता की विषयवस्तु बनकर आई है। काव्यलेखन की आरंभिक दशा में ही रामविलास शर्मा के कवि व्यक्तित्व की सही पहचान हुई थी। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' में मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर आदि के साथ रामविलास शर्मा को भी उचित स्थान दिया गया। 'तारसप्तक' में प्रकाशित कविताएँ उनके द्वन्द्वात्मक चिंतन की उपज मानी जाती हैं। ज़िंदगी के सुखद एवं दुखद संदर्भों का द्वन्द्व, प्राचीन और आधुनिक संवेदना का द्वन्द्व आदि उनकी कविता के आंतरिक संघर्ष को शब्दबद्ध करते थे। लेखकीय वक्तव्य के अन्तर्गत रामविलास ने इसपर विस्तार से विचार किया है। उनकी मान्यता थी कि सामाजिक जीवन के संदर्भ में ही रचनाकार अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते हैं। इसलिए कविता के विकास को जनता के अभियान से जोड़ देना उनके लिए अनिवार्य कर्म है। रामविलास शर्मा का विचार है कि जो इस अभियान के विरोधी हैं, वे कुण्ठा और घुटन के कारागार में स्वयं को बंदी बना लेते हैं। इस आस्था की अभिव्यक्ति उनकी कविता में भी पाई जाती है।

रामविलास शर्मा का मानवतावादी दृष्टिकोण कविता की सामाजिक संपृक्ति को बनाया रखता है। अपनी कविता के ज़रिए वे इस पृथ्वी को सर्वनाश से बचाने की योजना तैयार करने का आह्वान करते हैं और प्राकृतिक

संसाधनों के अनियंत्रित शोषण के खिलाफ चेतावनी देते हैं। आनेवाले तूफान का सामना करने के लिए जागृत होने की याद दिलाते हैं जिसमें उनकी भविष्यवाणी मुखरित है। इतिहासबोध रामविलास की कविता को नया आयाम प्रदान करता है। 'दारा शिकोर' इस तरीके की कविता है, जिसमें कवि दारा के उदात्त चरित्र को खींच देते हैं। कविता में औरंगसीब के आदेश पर दारा बंदी बनाया जाता है। वे अपनी प्रिय पत्नी नादिरा की निशानी में रखी चादर भिखारी को दान में दे देते हैं। इस कविता के माध्यम से रामविलास शर्मा एक विशिष्ट आदर्श की परिकल्पना करते हैं। उनकी जनवादी नज़रिए को स्पष्ट करनेवाली कविता एक साथ अन्याय का कठिन धिक्कार और राजसत्ता की कटु आलोचना करती है।

रामविलास शर्मा की राजनीतिक कविताओं का संकलन है 'सदियों के सोए जाग उठे'। किसान जागा ज़मींदार भागा, बुधई के गाँव में, लाल झंडा, बावन दिन की हड़ताल, सिलहार आदि उनकी राजनीतिक एवं प्रगतिशील कविताएँ हैं जिनमें साम्यवादी दर्शन के तमाम लक्षण दर्शित हैं और दमनमूलक सभ्यता से घायल आत्मा की पुकार सुन सकते हैं। उत्तर केरल के कय्यूर की शहादत को लेकर रामविलास ने एक गंभीर और प्रभावोत्तेजक कविता लिखी है। उसका शीर्षक है 'कय्यूर के किसान पुत्रों की शहादत'। इस कविता में कय्यूर की क्रांतिज्वाला को पूरे भारतवर्ष में व्यक्त करने की आशा प्रकट की गई है। 1946 में प्रकाशित प्रस्तुत कविता इतनी मशहूर हो गई कि 'किसानसभा' और 'प्रगतिशील लेखक संघ' के सम्मेलनों में गायक दल इसे अत्यधिक उत्साह के साथ प्रस्तुत करते थे। राहुल सांकृत्यायन ने इसकी खूब प्रशंसा की थी।

रामविलास शर्मा की कविता विभिन्न राजनीतिक संदर्भों से प्रेरित होकर सामाजिक आंदोलन की नई भूमिका तैयार करती है। कल्पना के बाहर एक नई दुनिया को विकसित करने के सांस्कृतिक लक्ष्य उनकी कविता उठाती है। प्रचारात्मकता उसकी प्रमुख प्रवृत्ति मानी जाती है। उनकी दृष्टि में अच्छी राजनीतिक कविता के लिए प्रचारात्मक प्रकृति अनिवार्य है। उनकी काव्यभाषा इस संस्कार के बिल्कुल अनुकूल है। जन सामान्य से संवाद करने के और जनपद से जुड़ जाने के आग्रह से, रामविलास शर्मा ने काव्यभाषा को सरलीकृत किया और भाषा की आंचलिकता को बनाए रखने के लिए देशज शब्दों को बहुतायत से प्रयुक्त किया। संगीतकार होने के नाते उनकी कविता में संगीत के लय और धुन की सरलता यत्र-तत्र अनुभव होती है। उसमें सदा एक आदर्श स्थिति दिखाई देती है। इतिहासबोध, सांस्कृतिक दृष्टि, विद्रोही चेतना, नवजागरण की आकांक्षा, साम्यवादी विचारधारा, विश्वदृष्टि आदि उनके सार तत्व हैं। प्रत्युष के पूर्व में, नई दिल्ली का धनुषयज्ञ, लोकायत विजय, ट्रमैन की पाठशाला, तीन सयाने नेता आदि उनकी प्रमुख जनवादी कविताएँ हैं, जो समाज के संकट को सरल रूपकों में बाँधती हैं। इस दृष्टि से, हिंदी कविता की विद्रोही परंपरा को बनाए रखने में रामविलास शर्मा की कविताओं की विशेष भूमिका है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में रामविलास शर्मा की प्रतिष्ठा एक मूर्धन्य प्रगतिवादी आलोचक के रूप में हुई है। क्रूर,अमानवीय तथा न्याय विहीन समय को उभारनेवाली कविताओं के ज़रिए उन्होंने जनचिंतन का दृढ़ रूप निर्मित किया है। अपनी समीक्षा में वे जितने ही अधिक कठोर प्रतीत होते हैं, उतने ही उनके कवि अधिक अनुभूति-प्रवण और भावनाशील हैं। शोषण तथा अनाचार के चक्र में पिसती जनता के प्रति हार्दिक व्यथा तथा संवेदनाएँ रामविलास शर्मा ने प्रकट की हैं। यद्यपि वैयक्तिक स्तर पर भी उन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं, फिर भी अभिव्यक्ति के नये प्रकारों तथा रूपाकारों के नये प्रयोगों को लेते हुए उन्होंने प्रगतिवादी कविता की अनेक सम्भावनाओं के प्रति लोगों को आकृष्ट तथा आश्वस्त किया है। [8].

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कविता में लोक-जीवन के विभिन्न चित्र रचते हुए रामविलास शर्मा अभिजात-रुचि द्वारा उपेक्षित मामूली जनता को पुनर्जीवित करते थे और सामाजिक संवेदन के माध्यम से हिंदी कविता के प्रगतिवादी मूल्यों का उद्धार करने का लगातार प्रयास करते थे। निस्संदेह, उनकी काव्य विरासत तथ्य-तर्कमूलक चिंतन के स्थान पर सृजनात्मकता के क्षेत्र में चिन्ताजनक स्थिति निर्मित करती है, जिससे प्रगतिशील साहित्य का मानववादी स्वरूप अधिकाधिक दिखाई देता है।

संदर्भ

1.मैनेजर पांडेय, बातचीत, अलाव पत्रिका, अक्तूबर, 1993, पृ.118

2.नन्दकिशोर, विचार और कविता, संभव पत्रिका, अप्रैल-सितंबर, 1992

3.श्रीप्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सॉन्दर्य-लोकतत्व, पृ.41, लोक भारती प्रकाशन, 2001

4.धनंजय अवस्थी, स्वच्छंदतावाद की विरासत, लेखन पत्रिका,1993, पृ.18

5.नामवरसिंह, प्रगतिशील कविता के ऐतिहासिक आयाम, साक्षात्कार, प्रतिकृति पत्रिका, जुलाई-अगस्त, पृ. 26

6.शिवकुमार मिश्र, प्रगतिवाद, पृ.33, वाणी प्रकाशन, दूसरा संस्कारण, 2016

7.वही, पृ.33

8.नामवरसिंह, प्रगतिशील कविता के ऐतिहासिक आयाम, साक्षात्कार, प्रतिकृति पत्रिका, जुलाई-अगस्त, पृ.27

◆ असोसियेट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, महाराजस कॉलेज
एरणाकुलाम, केरल।

"नगाड़े की तरह बजते शब्द"- पितृसत्तात्मकता के विरुद्ध बजनेवाला आदिवासी नारी का नगाड़ा

◆डॉ.अंबिली टी

सारांश

वर्तमान युग के हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य एक विशेष पहचान बनाते नज़र आता है। निर्मलापुतुलजी सशक्त आदिवासी कवयित्री हैं। भूमंडलीकरण की यह दुनिया किस प्रकार आदिवासी क्षेत्र को नष्ट कर उसकी पहचान

बदलती हुई नज़र आ रही है, इसका चित्रण निर्मलाजी की कविताओं में है। निर्मला पुतुल का संवेदनशील कविता संग्रह है 'नगाड़े की तरह बजते शब्द'। इसमें आदिवासी नारी की समस्याओं का सशक्त चित्रण मिलता है। इन्होंने जो भोगा है, उसका मार्मिक चित्रण इसमें मिलता है। पितृत्तात्मक समाज पर कटु प्रहार करनेवाली रचना है 'नगाड़े की तरह बजते शब्द'।

बीज शब्द: भूमंडलीकरण, संवेदनशीलता, पितृसत्तात्मकता, मानवाधिकार, अस्तित्व, आदिवासी।

इक्कीसवीं सदी विमर्शों की सदी रही है। वर्तमान युग के हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य एक विशेष पहचान बनाते हुए नज़र आता है। आदिवासी समुदाय में नये-नये साहित्यकार उभरकर सामने आ रहे हैं। इन साहित्यकारों में निर्मला पुतुल का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। वे साहित्य लिखने के साथ सामाजिक विकास, मानवाधिकार, शिक्षा, आदिवासी महिलाओं के समग्र उत्थान आदि के लिए व्यक्तिगत, सामूहिक एवं संस्थागत स्तर पर सतत सक्रिय हैं। इनकी संवेदनशीलता इनके साहित्य में विशेषकर कहानियों में झलकती है। निर्मलाजी के तीन कविता संग्रह हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुए हैं- 'अपने घर की तलाश में', 'बेघर सपने' और 'नगाड़े की तरह बजते शब्द'।

निर्मला पुतुलजी जिस समुदाय से आई हैं, वह संथाल समुदाय वर्तमान युग में भी पुराने रीति- रिवाज़ों में उलझा दिखाई देता है। भूमंडलीकरण की यह दुनिया किस प्रकार आदिवासी क्षेत्र को नष्ट कर उसकी पहचान बदलती हुई नज़र आ रही है, इसका चित्रण निर्मलाजी की कविताओं में है। इनकी कविताओं में लगातार छले गये सबसे भोलेभाले लोगों की संवेदनाएँ समाहित हैं।

निर्मला पुतुल का छोटा एवं संवेदनशील कविता संग्रह "नगाड़े की तरह बजते शब्द" में आदिवासी नारी की समस्याओं का सच्चा सशक्त चित्रण मिलता है। संथाल परगना(झारखंड) के धुधानी करुआ गाँव में इनका जन्म हुआ था। निस्संदेह इन्होंने जो भोगा, उनका मार्मिक चित्रण भी किया है।

'नगाड़े की तरह बजते शब्द' संकलन की एक कविता है 'क्या तुम जानते हो'।इसमें पुरुष प्रधान समाज से आदिवासी नारी सवाल कर उठती है। कहने को तो समाज रूपी गाड़ी को चलाने के लिए स्त्री- पुरुष रूपी दो पहियों की ज़रूरत होती हैं। मगर पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री अपने ही घर में अपना वज़ूद तलाशती रह जाती है। समाज में गढ़े गये सारे मान, मर्यादा, नियम,शर्तें सभी कुछ केवल स्त्रियों पर लागू होती है। स्त्री स्वयं रोज़ टूटती और बिलखती है। लेकिन रिश्तों की बुनियाद को मज़बूती प्रदान कर उसे कभी बिखराने नहीं देती। कवयित्री कहती हैं-

"बता सकते हो/ सदियों से अपना घर तलाशते/एक बेचैन स्त्री को उसके घर का पता/ सपनों में भागती एक स्त्री का पीछा करते/कभी देखा हैतुमने उसे/रिश्तों के कुरुक्षेत्र में/ अपने आपसे लड़ते?/तन के भूगोल से परे/एक स्त्री के मन की गाँठें खोलकर/कभी पढा है तुमने/उसके भीतर का खौलता इतिहास?/अगर नहीं/तो

फिर जानते क्या हो तुम/ रसोई और बिस्तर के गणित से परे/एक स्त्री के बारे में?"[1]

प्रस्तुत संकलन की एक छोटी सी कविता है 'आदिवासी स्त्रियाँ'।इसमें भोली-भाली आदिवासी स्त्रियों की संकुचित सी दुनिया को कवयित्री चित्रित करती हैं। यद्यपि आदिवासी स्त्रियाँ अपनी दुनिया तक सीमित रहती हैं, पर आश्चर्य होता है कि कैसे वे और उनकी चीज़ें राजधानी तक पहुँच जाती हैं। आखिर इन साज़िशों के पीछे कौन है? वे इशारों में ही सबकुछ कह देती हैं-

"उनकी आँखों की पहुँच तक ही/सीमित होती उनकी दुनियाँ/वे नहीं जानती कि /कैसे पहुँच जाती हैं उनकी चीज़ें दिल्ली/तस्वीरें कैसे पहुँच जाती हैं उनकी, महानगर/ नहीं जानती वे! नहीं जानती!"[2]

'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' कविता में आदिवासी नारी,पुरुष-प्रधान समाज के पुरुषों से सवाल कर उठती है कि तुम बताओ तो सही, आखिर एक स्त्री तुम्हारे लिए क्या मायने रखती है? वह अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहती है कि मेरा वज़ूद तुम्हारे लिए महज़ इस्तेमाल कर फेंक दिए जानेवाली चीज़ों(यूज़ एन्ट थ्रो) से अधिक नहीं है।

"क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए/ एक तकिया/कि कहीं से थका माँदा आया

और सिर टिका दिया/कोई डायरी/कि जब चाहा/कुछ न कुछ लिख दिया

खामोश खडी दीवार/कि जब जहाँ चाहा/कील ठोंक दी/कोई गेंद/जकीसे चाहा उछाल दी/या कोई चादर/कि जब जहाँ जैसे तैसे/ओढ बिछा ली?चुप क्यों हों!/कहो न, क्या हूँ मैं/तुम्हारे लिए।"[3]

दरअसल एक स्त्री घर, परिवार और समाज में निरंतर अपना अस्तित्व तलाशती रहती है। इसे स्त्री होने की विडंबना कहे या अभिशाप, उसे समाज में कहीं भी अपना अस्तित्व नज़र नहीं आता। 'अपने घर की तलाश' में कविता के माध्यम से कवयित्री ने एक स्त्री के इर्द-गिर्द को रेखांकित किया है:-

"अंदर समेटे पूरा का पूरा घर/ मैं बिखरी हूँ पूरे घर में, पर यह घर मेरा नहीं हैघर के बाहर लगी नेम प्लेट मेरे पति की है। मैंधरती नहीं पूरी धरती होती मेरे अंदर/पर यह नहीं होती मेरे लिए।/धरती के इस छोर से उस छोर तक/मुट्ठी भर सवाल लिए मैं/ दौडती हँफती भागती /तलाश रही हूँ सदियों से /निरंतर अपनी ज़मीन अपना घर/अपने होने का अर्थ।"[4]

कवयित्री स्त्रियों को तथाकथित स्त्री की धारणा से मुक्त देखना चाहती हैं। कथित मर्यादाओं के बंधन से मुक्त वह स्त्री को व्यक्ति मात्र या मानव मात्र के रूप में प्रतिष्ठित होते देखना चाहती हैं। इस संदर्भ में वे अपनी आकांक्षा व्यक्त करते हुए लिखती हैं-

"मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते

मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से।" [5]

आदिवासी स्त्री अपने को पति से मुक्त मानव जाति के रूप में देखना चाहती है। यह आकांक्षा, एक समरस समाज बनने के सपने से भरी हुई है, जहाँ स्त्री और पुरुष की श्रेष्ठता का पैमाना लैंगिक न होकर श्रम और कार्य-कुशलता को बनाया जाएगा। इस तरह वे आदिवासी स्त्रियों के साथ, तमाम वंचित स्त्रियों को भी अपनी कविता में स्थान देती हैं। उनकी वास्तविक चिन्ता, स्वच्छ और समानता के मूल्यों पर आधारित समाज

बनाने की है।

निर्मला पुतुल जिस समुदाय से आई हैं, वह संथाल समुदाय वर्तमान युग में भी पुराने रीति-रिवाज़ों में उलझे दिखाई देता है। भूमंडलीकरण की दुनिया किस प्रकार आदिवासी क्षेत्र को नष्टकर उसकी पहचान बदलती हुई नज़र आ रही है इसका चित्रण कवयित्री निर्मलाजी 'संथाल परगना' में करती हैं। बदलते मूल्यों एवं संस्कृति के साथ आदिवासी स्त्रियों के स्थान घटते जा रहे हैं। फलस्वरूप आदिवासी स्त्री को, शहरी लोगों ने अपने दारु की मस्ती बढानेवाला साइड डिश बना दिया है। कवयित्री इस मसले पर विचार करते हुए लिखती हैं -

"बोतलों में नशा है/नशे में तैरती/ गदरई देहवाली कई कई आदिवासी लड़कियाँ हैं/आदिवासी लड़कियों के पास सपने हैं/सपनों में अधूरी इच्छाएँ हैं।" [6]

हर लड़कियों के मन में अपने जीवन साथी को चुनने की चाहत होती है। लेकिन आदिवासी लड़कियाँ अपने हक से वंचित हैं। अगर कोई लड़की अपने जीवन साथी या ससुराल के बारे में अपनी चाहत प्रकट करती है तो समाज उसे बुरी नज़र से देखता है।लड़कियों के अपने भविष्य वर के बारे में कई सपने होते हैं। वे चाहती हैं कि अपना पति उनके हर सुख-दुख में साथ दें और उनका संरक्षण करें। कोई भी लड़की अपना पति गंदा आदमी या शराबी होना नहीं चाहती। वह ईमानदार, ताकतवार, अक्लमंद लड़का चाहती है। इसलिए निर्मलाजी 'उतनी दूर मत ब्याह्ना बाबा' कविता के ज़रिए लड़कियों को अपने ख्वाबों और सपनों को निर्भय अपने परिवार के सामने प्रस्तुत करने के लिए ऊर्जा देती हैं-

"माहिर हो मेल से लड़कियाँ उडा ले जाने में / ऐसा वर मत चुनना मेरी/...../ जो हाथ लिखना नहीं जानता हो 'ह' से हाथ/उसके हाथ मत देना कभी मेरी हाथ।" [7]

आदिवासी और आदिवासी लड़कियों के कठिन संघर्षों से भरे जीवन के रोमांटिज़िज़म को तगड़ा जवाब देती हैं संथाली कवयित्री निर्मला पुतुल। आदिवासियों के अभावों से भरे जीवन को ग्लोरिफाइ करने की कोशिशों को वे महज़ शब्दों का धोखा बताती हैं। आदिवासी स्त्रियों के जीवन के बारे में इतने बड़े झूठ कहनेवाले लोगों को यहाँ कवयित्री करारा व्यंग्य करती हैं। कवयित्री भली- भाँति समझती हैं कि आदिवासी स्त्री कोई पत्थर या निर्जीव वस्तु नहीं है। वह भी इंसान है।

"ऊपर से काली/ भीतर से अपने चमकते दांतों/ की तरह शांत धवल होती हैं वे
वे जब हंसती हैं फेनिल दूध सी/ निश्छल हंसी/ तब झर झराकर झरते हैं...../ पहाड की कोख में मीठे पानी के सोते/ जूडे में खोंसकर हरी पीली पत्तियाँ/जबनाचती हैं कतार बद्ध/ मांदल की थाप पर/आ जाता तब असमय वसन्त/ वे जब खेतों में/ फसलों को रोपती काटती हुई/ गाती हैं गीत/ भूल जाती हे ज़िन्दगी के दर्द/ ऐसा कहा गया है/ किसने कहे हैं उनके परिचय मेंइतने बडे बडे झूठ?/किसने?" [8]

स्त्री के विभिन्न रूप होते हैं, माँ-बेटी, साँस-बहू, देवरानी, जिठानी, बहन आदि। उसे सभी रिश्ते निभाने पड़ते हैं। विवाह से पूर्व उसकी सारी यादें, घर आँगन, माता-पिता,

भाई-बहनें, गाय-भैंस, भेड-बकरियों, खेत, पानी के घड़े आदि में बसी होती हैं। जब उसका विवाह कर दिया जाता है, तब अपना सबकुछ छोड़कर दूसरों के आँगन को अपना बनाना पड़ता है। ऐसे समय ससुराल जाने से पूर्व अपनी माँ के सम्मुख रोते हुए अपना दर्द सुनाती है। 'माँ के लिए ससुराल जाने से पहले' कविता में यह द्रष्टव्य है।

"पर क्या सचमुच/ जा सकूँगी पूरी की पूरी यहाँसे?/आँगन में पडे टूटे झाडू सा/पडी रह जाऊँगी कुछ न कुछ यहाँ.../ पानी के खली घडे में / भरी रह जायेंगी मेरी यादें..." 9

आदिवासी स्त्री अपनी सारी मसलों से बाहर आने के लिए तड़पती है। वह अपनी चुप्पी तोड़ना चाहती है। अपने चारों तरफ कई प्रकार की जंजीरों सेबंधी हुई हैं। वह इन सारी समस्याओं से भागना चाहती है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आदिवासी समाज से स्त्रियाँ सशक्त रूप में सामने आ रही हैं।अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन स्त्रियों का मार्मिक चित्रण हमें यहाँ मिलता है। जैसे वे स्वयं अपनी कविता के बारे में कहती हैं-

"यह कविता नहीं/मेरे एकांत का प्रवेश द्वार है/यहीं आकर सुस्तानी हूँ मैं/ टिकाती हूँ यहीं अपना सिर/ ज़िन्दगी की भाग दौड से थक हारकर/जब लौटती हूँ यहाँअहिस्ता से खुलता है/ इसके भीतर एक द्वार/जिसमें धीरे से प्रवेश करती मैं/तलाशती हूँ अपना निजी एकांत" 10

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि "नगाडे की तरह बजते शब्द" ऐसा कविता संकलन है, जिसमें आदिवासी नारियों की बहुमुखी समस्या का सशक्त चित्रण मिलता है। निर्मलाजी ने सशक्त भाषा में आदिवासी नारियों के जीवन की गहराईयों में पैठकर उनकी पीड़ा को विशेषतःस्वयं अनुभूत पीड़ा को बिना संकोच के खुल्लमखुल्ला प्रकट किया है। निर्मला पुतुल अपने सवालों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रहार करती रहती हैं। अपनी बात बताने से वे हिचकती नहीं, बनी-बनायी लकीरों पर चलना नहीं चाहती हैं। इसलिए अपने तरीके से लिख रही हैं। अब इनके शब्द नगाडे की तरह बजेंगे और खलबली मचेंगे कोने-कोने में।

संदर्भ

1.निर्मला पुतुल, नगाडे की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2012- पृ. 12

2.वही- पृ.44-45

3. वही - पृ. 21

4. वही – पृ.22

5. वही –पृ.19-20

6. वही – पृ. 24

7. वही – पृ.41-42

8. वही – पृ.26-27

9. वही –पृ.91

10. वही – पृ. 92

◆असिस्टेंट प्रोफसर

हिन्दी विभाग

सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

केरल।

मो- 9495369970

ई-मेल- ambilihindi@gmail.com

ईश्वर और धार्मिक प्रथा के नाम पर धोखे की अभिव्यक्ति जसिंता केरकेट्टा की कविता में

◆ डॉ. प्रदीपा कुमारी आर

झारखंड के पश्चिमी सिंहभूम जिले के खुदपोस गाँव में 1983 में जन्मे श्रीमती जसिंता केरकेटटा मशहूर कवि,लेखक,पत्रकार एवं कार्यकर्ता भी हैं। 'जड़ों की जमीन','ईश्वर और बाज़ार' आदि काव्य संकलनों की कविताओं द्वारा वे गरीब एवं हाशिएकृतों की विपत्तियों को वाणी दे रही हैं और आम जनता के शोषकों के कुकर्मों के सपाट बयान भी कर रही हैं।

बीज शब्द: प्रार्थना, रूढ़ी, आम आदमी, धोखा।

"प्रार्थना का समय" कविता रेखांकित करता है कि ईश्वर के नाम पर धोखा देने की साजिश आदमी को निकम्मा बना देता है'।असंगत एवं अनहोनी पर प्रश्नचिह्न लगाकर अंगुली उठानेवाले फिर विनम्रता से हाथ जोड़कर भौचक दीख पड़ते हैं। गरीबी,भुखमरी और बीमारी से अनवरत संघर्ष करनेवाले निरीह लोगों पर यह विश्वास थोपा गया है कि "ये सब सिर्फ ईश्वर पर यकीन न करने के परिणाम हैं"। कई लोगों का अन्न कुछ चुने हुए लोगों के पेट में कई दिनों तक बिना किसी कारण से अटका रहता है और सिर्फ मुट्ठी भर के लोगों के पेट में ही फसल का बड़ा हिस्सा फँसा रहता है। इस स्थिति को 'ईश्वर का चमत्कार' और बाकी सब की पीडा 'अपनी आस्था पर खरे न होने की सजा' कहा गया है। जीने की हालत बदलने के सुनहले सपना से आप्लावित होने से,विश्वास को और मज़बूत बना देने केलिए बिना और कुछ सवाल करके सभी निरीह लोग बाल-बच्चों सहित दिन भर प्रार्थना सभा में जा बैठे और प्रभाषण देनेवाले ज्ञानियों के मुँह ताकते रहे।पीढ़ियाँ कई बदल गईं,लेकिन आम जनता के जीवन और हालत में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं हुआ।तभी कहा गया -

"तभी हमसे कहा गया बदलाव त्याग माँगता है
और हमने गांठ के रुपये के साथ अपनी हासा-भाषा सब त्याग दिए !"[1]

सब कुछ खो बैठे लोग बेसहाय होकर ईश्वर के तथाकथित चमत्कार के इंतजार में सब कहीं घूमते रहे तो पण्डितों की सभा चीखती रही और एक झूठा सच सिखाया कि चमत्कार ऊपर से होते हैं।

"हमने अपने बंध आँखें ऊपर उठा लीं
और बीमारी की जड़ें नीचे रह गईं
हाथ जोड़कर बदलाव की प्रार्थना की
इस तरह हमने सीखा
बिना सवाल किए कैसे जोड़े जाते है हाथ"।[2]

आदमी और भी गुमराह किया गया कि उधर भविष्य में कहीं स्वर्ग है। न आनेवाले कल का इंतजार करना बेकार महसूस होने पर तथा ऐसे लगातार धोखा खाने पर उन आम लोगों ने अंतत: प्रतिरोध केलिए साहस जुटाया -

"कि तभी
अलग-अलग दिशाओं से अलग-अलग आवाज में
घंटे बज उठे यह कहते हुए
कि जुटान खत्म हो
यह प्रार्थना का समय है" ।[3]

'पूजा स्थल की ओर ताकता देश' कविता में दिशा हीन,भ्रमित बेकामयाब सत्ता को दर्शाया गया है।पूरा देश गरीबी,भूख और असाध्य बीमारी से लड़ता रहता है और सत्ता बचाव केलिए पूजा स्थान की ओर ताकता है तो विडंबना ही है -

"ऐसा असहाय देश अपनी बीमारी का इलाज
अगर किसी पूजा-स्थल में ढूँढता है
तब उसे अपने ही हाथों
मरने से कौन बचा सकता है ?"[4]

'मनुष्यों का देवता' कविता में कवयित्री आम आदमी की पक्षधर होकर बुलंद आवाज़ में पूछती हैं कि देवताओं ने कब सबकी मुक्ति चाही है ।इतिहास के पन्ने साक्षी हैं कि देवता चापलूस के साथी रहे,जिन्हें असल में प्रतिरोध करने की ताकत भी नहीं उनके खिलाफ चिरस्थायी लड़ाई की।युद्ध में जीत केलिए किसी न किसी आदमी की बली भी देते रहे। आधुनिक राजनीतिक क्षेत्र की कुनीति से अवगत होकर वे लिखती हैं कि ये देवता युद्धभूमि से अब राजनीति में आ गये हैं। ज़माना कई बदले, परिवर्तन अनवरत होते रहे ,लेकिन इनके नज़रिए और नीति नहीं बदली। ये कुछ केलिए अभयदाता हैं लेकिन बाकियों से बलि माँगकर मानवीयता के संरक्षक के रूप में खुद घोषित करनेवाले ये अमानवीयता के पोषक बन जाते हैं ।

"देवता भला क्यों सबका भला नहीं चाह पाता?
क्यों कुछ केलिए चाहता है अभयदान
और बाकियों से माँगता है बलिदान?
वह आखिर किसकी देवता है ?
जो मनुष्यता नहीं जानता
वह मनुष्यों का देवता कैसे हो सकता है ?" [5]

'सभ्यताओं के मरने की बारी' कविता में झूठी धार्मिक रूढ़ी या प्रथा के नाम पर परिस्थिति का संतुलन बिगाड़ने का कार्य करनेवालों का जिक्र किया गया है।भारत में कई नदियों में आदमी की लाशें बह रही हैं। ऐसा विश्वास है कि लाश को नदी में बहा देने से मरे हुए आदमी का पाप घुल जाता है।कपड़े और लाश जल के ऊपर ऐसे पड़े रहने के कारण ऑक्सीजन की कमी से बहुत सी नदियाँ मर गयीं।

"एक दिन जब सारी नदियाँ
मर जाएंगी ऑक्सीजन की कमी से
तब मरी हुई नदियों में तैरती मिलेंगी
सभ्यताओं की लाशें भी" ।[6] .

कवयित्री का मंतव्य है कि मरे हुए के नाम पर ज़िंदे की हत्या से संसार का सर्वनाश ही संभव है,विवेक से बरताव नहीं किये जाने पर अगली पीढ़ी केलिए एक बूंद जल भी यहाँ नहीं बचेगा।

'जब कुछ महसूस नहीं होता' कविता में कवयित्री कहती हैं - पानी,मिट्टी,पेड़ या प्रकृति की मृत्यु किसी को महसूस नहीं होती तो वे पहले मर चुके हैं ;

"पहले मिट्टी,पानी,पेड़ मारे गए
किसी ने कुछ महसूस नहीं किया
जिन्हें कुछ महसूस नहीं होता
वे पहले मर चुके होते हैं
बाद में वे सिर्फ दफनाए जाते हैं।"[7]

कवयित्री आम आदमी की पक्षधर होकर उन्हें कर्तव्य विमूढ़ बना देनेवाले युगीन परिवेश का पर्दाफाश करती हैं और निरीह जनता को धोखा देकर लूटनेवालों की नकाब फाड़ देना चाहती हैं। समय के दबाव और मनुष्य की इच्छा-शक्ति को खोलनेवाला साहित्य ज़्यादा संकल्पशील और एक दुनिया के भीतर एक और दुनिया खोलनेवाला होगा,वही कल का साहित्य होगा।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यकों के दर्द को वाणी देकर मानवता की वक्ता होकर सृजनधर्मिता का दायित्व निभानेवाली जसिंताजी की कविता कालजयी होगी ।

संदर्भ

1)प्रार्थना का समय-ईश्वर और बाज़ार

(संग्रह),जसिंता केरकेट्टा,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, प्र.वर्ष-2022।

2) वही, पृ.13।

3) वही , पृ.14।

4) पूजा स्थल की ओर ताकता देश'-वही, पृ.35।

5) मनुष्यों का देवता ,वही, पृ.36।

6) 'सभ्यताओं के मरने की बारी, वही

7) जब कुछ महसूस नहीं होता, वही, पृ.37।

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, गवर्मेंट कालेज,

काँजीरमकुलम

तिरुवनंतपुरम, केरल।

नवजागरण कालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता

◆ **डॉ. एम.जी.बिन्दु**

कविता मानव संवेदनाओं की सघनतम भाषिक अभिव्यक्ति है। मानव जाति के चिन्तन और अनुभूति का सार कविता-चेतना की तह में निहित रहता है । कविता की अनुभूति परिवेशगत है। कवि परिवेश में व्याप्त दुख, दर्द और पीडा का अनुभव करता है । वही अनुभव संस्कारित होकर कविता का रूप ग्रहण करता है । समस्त साहित्य विधाओं में कविता अपना अलग दर्जा पेश करती है।

बीज शब्द : नव जागरण, देश की दुरास्था।

कविता का निर्माण व्यक्तिपरक है। लेकिन उसकी व्यक्तिपरकता निर्मिति तक सीमित है। जब कविता की व्यक्तिपरकता उसको समष्टिपरक बनाने के मकसद को लेकर चलती है तब कविता कवि की नहीं पूरे समाज की हो जाती है। असल में कविता मानव मन काएक हिस्सा है । मानव को, उसकी वास्तविकता को व्यक्त करना कविता का मूल मकसद होता है । साहित्य का सही सरोकार मानवीय संवेदना की वास्तविकता को व्यक्त करने का रहा है । कविता इस संवेदना को और अधिक मज़बूत करने माहिर होकर आगे बढ़ती है ।[1]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कविता के विकास को तीन कालों में विभाजित किया गया है- आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल । इनमें आदिकाल तथा मध्यकाल की कविता बहुत अंश तक सामन्तों और राजाओं केलिए लिखी जानेवाली रही। अतःउस समय राजाओं और सामन्तों के इंगित के अनुकूल कविता लिखनेवाले कविगणों का बोलबाला था ।आदिकालीन वीरगीतों में राजाओं और सामन्तों की प्रशंसा, गुणगान तथा उनके वीरत्व भावनाओं का बखूबी वर्णन दिखाई पड़ता है। मध्यकाल भक्ति एवं रीति परंपरा का काल था । भक्ति के भजनों, राजवंश के ऐतिहासिक चरितकाव्यों, अलंकार, नायिका भेद, वीरश्रृंगार भावनाओं, कवित्त सवैया और दोहों की रचना बराबर होती आ रही थी। साहित्यनिष्ठ व्रज और अवधिभाषा में मात्र कविता लिखी जाती थी । अतः यह स्पष्ट था कि कविता जनसामान्य से बहुत दूर थी। हिन्दी साहित्य का वीरगाथाकाल वीरता का युग था। उसमें वीररस की उत्कृष्ट व्यंजना हुई। उसी प्रकार भक्तिकाल और रीतिकाल में भक्ति और श्रृगार की प्रधानता रही। हिन्दी साहित्य की यही तीन प्रधान प्रवृत्तियाँ हैं। [2]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल एक प्रकार से साहित्य का सुवर्णकाल रहा। इस काल में साहित्य अपने भूतकालीन अपरिपक्वता और जड़ता को छोड़कर समाज की ओर उन्मुख होने

लगा। पूरे साहित्यिक माहौल में परिवर्तन- यही आधुनिक साहित्य की मूल चेतना रही। इस परिवर्तन की प्रक्रिया को नवजागरण नाम से पुकारा जाने लगा।

नवजागरण हिन्दी कविता को नए क्षितिज पर खडा करने के कार्य में हमेशा जुड़े रहे। इस नए क्षितिज पर देश हितैषी भावना सर्वस्व रही। उस समय कविता के सामने देश की पराधीनता का यथार्थ था और स्वाधीनता का स्वप्न भी। भूतकालीन भक्ति, प्रेम और आध्यात्मिक भावना का देशप्रेम और देशभक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाना इस सपने को साकार करने के परिश्रम का परिणाम था। पूरे सामाजिक माहौल में हुए राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण भी इसी परिश्रम के कारण है। नवीन युगबोध की अभिव्यक्ति की यह प्रक्रिया भारतेन्दु युग से होकर छायावाद युग तक चलती रही। नवजागरण के साहित्य में अन्तर्विरोधों और दुविधाओं की कमी नहीं है। फिर भी उनकी आधुनिकता प्रगतिशील तथा जनवाद की अन्दर्धारा सामन्ति पुँजीवाद तथा साम्राज्यवादी परंपराओं और प्रवृत्तियों को कुचलते हुए छायावाद तक पहुँचती है। [3]

समाज का संस्कार और परिष्कार, लोकहित, देश का उद्धार आदि भावनाओं को लेकर नवजागरण की कविता आगे बढ़ती रही । अतः नवजागरण की कविता भारत की पराधीनता को पहचाननेवाली तथा स्वाधीनता की चेतना की अभिव्यक्ति को अपना चरम लक्ष्य मानकर चलनेवाली रही। उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर साहित्य के क्षेत्र में नवजागरण को लेकर हुए युगान्तकारी परिवर्तन हिन्दी कविता को, उसके स्वरूप को बहुत अंश तक हिला दिया है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिवर्तन कविता को नवीन दिशा की ओर मोड़ा। देश की कमियों एवं दुरवस्था का वर्णन, उसके उत्थान-पतन का वर्णन कविता का प्रथम लक्ष्य हो गया। इसकेलिए कल्पना को छोड़कर वास्तविकता को लेकर कविता लिखी जाने लगी। भारत की आधुनिक राष्ट्रीयता नवजागरण की उपज है। इसमें देश प्रेम और देशहितैषी भावों को जगाकर जनता के मन में नए जोश और ओजस्विता उत्पन्न करने का कार्य चलता रहा। अपने देश के प्रति हर व्यक्ति के मन में प्यार और लगाव का होना स्वाभाविक है। भारतवासी भी इससे अछूते नहीं रहे। वे अपने देश को पुण्यभूमी मानते हैं। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गातपि गरियसी" वाले भाव को मन में ठानकर वे चलते हैं । भारत के गुलामीपन के इस काल में देश की दुरवस्था को देखकर जनता बहुत दुखी हुए। देश का अपमान वे अपना अपमान मानते थे। नवजागरण की हिन्दी कविता ने जनता के इस दुख दर्द को अपनाया देशप्रेम की श्रेष्ठतम भावना की अभिव्यक्ति का कार्य कविता की ओर से होने लगा। इस के लिए प्रथम प्रयास करनेवाले कविगणों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सर्वमान्य हैं। भारतेन्दुजी के बारे में कहें तो उन्होंने ही हिन्दी कविता को नवजागरण के साथ जोड़ा। उनके लिए नवजागरण का अर्थ समाजोन्मुखता है । वे कविता को समाजोन्मुख बनाने का कार्य करते रहे । उनकी अधिकांश कविताएँ परतंत्रता का बोध जगाकर तथा स्वतंत्रता की माँग को लेकर आगे बढ़नेवाली रही । लोकरक्षा, समाज-सुधार जैसे जनहितेषी भावनाओं की अभिव्यक्ति उनकी कविताएँ करती रहीं। भारतेन्दु ने हिन्दी कविता को नए मार्ग पर खड़ा किया। उन्होंने रीतिकालीन जडता को भंग करके कविता को जीवन के साथ जोड़ा । [4]

अतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मानव प्रकृति के कवि रहे। उनकी कविताओं में उमड़ी हुई भवना मानवमात्र के हित के लिए रहा । भारत देश की दुर्दशा उसकेलिए बहुत वेदनाजनक थी। देश की इस शोचनीय स्थिति का शिकार आम आदमी है। समाज के इस यथार्थ चित्र को वे अपनी कविताओं में खींचते रहे। देश के अतीत गौरव के वर्णन के ज़रिए निराश एवं हताश जन मन में नया जोश जागृत करने का कार्य वे करते रहे । अंग्रेज़ राज असल में

भारत को लूट रहे थे। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक रूप से ही नहीं, आर्थिक रूप से भी जनता निराश्रित थी । हमारा धनवैभव वे लूटकर चले जा रहे थे। इस पर क्षुब्ध होकर भारतेन्दुजी कहते हैं-

"अंगरेज़-राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चली जात इहे अति ख्वारी" [5]

श्री बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग के सशक्त कवियों में एक हैं। उन्होंने अपनी कविता 'पुरानी दिल्ली' में भारत की अतीतकालीन शक्ति और समृद्धि को दिखाया है। उस वैभव और समृद्धि के कारणभूत महान मनीषियों की प्रशंसा उन्होंने की है। कविता द्वारा वे यह सिद्ध करते हैं कि यहाँ की सामान्य जनता भी देश को समृद्ध बनाने में कार्यरत रही । वही भारतभूमि अपने स्वत्व केलिए रो रही है। भारत धरा पददलित और दुर्बल है । विदेशी शासन के पैर तले दबकर साँस लेने के लिए घिसकती है। देश की इस दुरवस्था पर दुख प्रकट करते हुए कवि कह उठते हैं-

"रही सकल जग व्यापी भारत राज्य बडाई
कौन विदेशी राज न जो या हिन ललचाई
रह्यो न तब तिन में इहि लखन को साहस
अर्थ राज रजेसुर द्विगविजनयीन के भयबस
पै लखि वीर विहीन भूमि भारत की आरत
सबे सुलभ समसमुझयो
या कहै आतुर असि भारत"[6]

अंग्रेज़ पूरे भारत में अपनी भाषा और संस्कृति का प्रसार करते रहे । इसके द्वारा एक प्रकार से वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नामावशेष करने का कार्य करते रहे। नवजागरण के कवि इस षड़यंत्र को पहचानकर अपनी कविता के ज़रिए इसका विरोध करते रहे । वे अपनी महनीय संस्कृति का गुणगान करते रहे । श्री मैथिलीशरण गुप्त भारत के स्वर्णिम अतीत का वर्णन इस प्रकार करते हैं -

"देखो हमारा विश्व में कोई उपमान नहीं था
नर देव थे हम, और भारत देवलोक समान था" [7]

भारत के पूर्वपुरुषों की युद्धवीरता,बल और बुद्धि वैभव का खूब वर्णन नवजागरण की कविता में देखने को मिलता है। कवि जनता को याद दिलाने का प्रयत्न करते थे कि हम परतंत्र भारत के निवासी उस महान परंपरा की संतानें हैं। हमें जाग उठना है और देश को गुलामीपन से मुक्त करना है। कवि सियारामशरण गुप्त कहते हैं –

"धीर वीर ये भारतीय होते हैं कैसे
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।" [8]

देश के अतीत गौरव की महिमा का गीत गाते समय नवजागरण के कवि देश की तत्कालीन पतितावस्था से चिन्तित भी हैं। भारतभूमि आज दरिद्र है, रोगग्रस्त है, असहाय है,परवश है। असकी स्थिति देखकर कवि द्रवीभूत हो उठते हैं । भारतदेश की दुरवस्था को पंतजी इस प्रकार खींचते हैं –

'बह रहा है नयनों से नीर, नहीं रे तन पर कोई चीर
देखती तेरी मुख की ओर हो रही जननी आज अधीरा' [9]

नवजागरण के कवि मानववादी रहे । आम आदमी की दुरवस्था कवि को हमेशा कचोटता ही रहा । निम्न जाति पर किए जानेवाले नृशंस व्यवहार से कवि क्रोधित हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं –

"रचि बहुविधि के बाक्य पुरानन माहिं घुसाए
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए
जाति अनेकन ककी ऊँच अरु नीच बनाए
खान-पान संबन्ध सबनि सों बरजि छुडाओ
बहु देवी-देवता भूत प्रेतदि पूजाई
ईश्वर सों सब विमुख किए हिन्दु घबराई "[10]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'अछूत की आह' नामक अपनी कविता में अछूतों के दुख का शब्दांकन करते हैं-

"हाय हमने भी कुलीनों की तरह

जन्म पाया प्यार से पले गए
जी बचे फूले फूले तो क्या हुआ
कीट से भी तुच्छतर माने गए"[11]

पूरे भारत में धर्म, जाति, वर्ग, वर्ण आदि के नाम पर शोषण का कार्य ज़ारी रहा था ।इस दावानल को और अधिक धधकाने का कार्य अंग्रेज़ों की ओर से होता रहा। देखने लायक बात यह है कि आम आदमी दोनों तरफ से प्रताडित थे। अपने दुख, दर्द और पीडा को प्रकट करने के लिए उसका कोई आसरा भी नहीं था । श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविता'भिखारी' इस स्थिति का स्पष्ट निदर्शन ही होंगी-

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर है एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टुक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता "[12]

संक्षिप्ततः नवजागरण की कविता अपने समय की माँग को पहचानती हुई कार्य करती रही। देश की राजनीतिक अराजकता को दूर करने की मशाल को लेकर कविता आगे बढ़ती रही। पराधीन भारत की मुक्ति यही इस समय के कवियों का मूल उत्स रहा। उनमें देश की स्वाधीनता की जितनी आकांक्षा है पराधीनता की उतनी ही तीखी आलोचना भी उन्होंने की है। एक व्यापक राष्ट्रीय समस्या का रूप नवजागरण कविता उतारती रही। इसके ज़रिए नूतन राष्ट्रनिर्माण की दिशा में वह कार्य करती रही।

संदर्भ

1.अन्तिम दशक की हिन्दी कविता, रवीन्द्रनाथ मिश्र। पृष्ठ सं : 4, लोकभारती प्रकाशन। वर्ष – 2012

2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास – श्रीकृष्णलाल। पृष्ठ सं :2, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय प्रयाग। वर्ष – 1900

3. भारतीय नवजागरण और भारतेन्दु - शंभूनाथ। पृष्ठ सं : 10, प्रकाशन संस्थान। वर्ष – 2009

4. आधुनिक हिन्दी कविता : डॉ. हरदयाल - पृष्ठ सं 14, आर्य प्रकाशन मंडल। 2008

5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ सं 597, रामनारायण लाल। वर्ष -1892

6. बालमुकुन्द गुप्त: पुरानी दिल्ली पृष्ठ सं 2, गुप्त स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन समिती। वर्ष -1950

7. भारत भारती: मैथिली शरण गुप्त पृष्ठ सं : 16, साहित्य सदन। वर्ष-1914

8. मौर्यविजयः सियारामशरण गुप्त पृष्ठ सः 7

9. स्वर्णधूलिः सुमित्रानन्दन पंत पृष्ठ सं 178, भारती भण्डार लीडर प्रेस प्रयाग। वर्ष-1947

10. भारत दुर्दशा (भारतेंन्दु नाटकवाली) : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ सं :604, मालिक एण्ड कंपनी ।वर्ष - 1875

11. अछूत की आह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ सं 55-56, पंजाब विश्वविद्यालय। वर्ष- 1933

12. अपरा: सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला पृष्ठ सं : 69, राजकमल प्रकाशन। वर्ष- 1946

◆ असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महाराजास कॉलेज , एरणाकुलम

कठोर वास्तविकता का दर्पण है 'अस्थि फूल'

◆ अभिषेक शर्मा , अन्नू शर्मा

सार: **"अस्थि फूल" "अल्पना मिश्र"** द्वारा झारखंड के नए राज्य बनने व वहाँ की आदिवासी आंचलिक सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थिति, नक्सलवाद एवं लिंग भेद तथा औरतों एवं बालिकाओं की तस्करी, उनका शारीरिक रूप से उपयोग व शोषण और एक वस्तु के रूप में प्रयोग कर उनके पतन को समझने की, पीढ़ी दर पीढ़ी की कथा है। वे सभी महिलाएँ इस उपन्यास की नायकाएँ हैं जो इतनी यातनाएँ पाकर भी लड़ने को तैयार हैं। अंत में घरेलू हिंसा व कई पुरुषों द्वारा शारीरिक शोषण का सामना करते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेती हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने अभिव्यक्ति के लिए अनेक रूपकों का प्रयोग किया है। 'फूल' उन मादाओं के लिए उपयोग किया गया है जो बचपन से ही शारीरिक छेड़छाड़ व पुरुषो के द्वारा बलात्कार का सामना करती हैं। उपन्यास दर्शाता है कि पुरुष भूखे शेरों की तरह है जो अपनी यौन भूख पर मादाओं को खोने के लिए तत्पर-तैयार हैं। कुछ ही ऐस लोग हैं जो इन महिलाओं की मदद के लिए आगे आते तो हैं। लेकिन समाज उससे बड़ा है और उस अच्छाई को खाकर फिर से अंधेरा कर जाता है। उपन्यास गरीबी की एक और समस्या को दर्शाता है। यह उपन्यास पूरी तरह से वासना, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, झारखंड और ग्रामीण आंचलिक जीवन व क्षेत्रों की ओछी राजनीति से भरा है।

बीज शब्द: अस्थि, आंचलिक, नक्सलवाद, शोषण, मादा, यातनाएँ।

लेखिका परिचय

18 मई 1969 को उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद में जन्मी श्रीमती अल्पना मिश्र सार्वकालिक प्रसिद्ध, और बहुचर्चित लेखिका में से एक हैं। लेखिका ने अपने बचपन में ही अपने चारों ओर साहित्य का उत्कृष्ट समा पाया, जो उनके हर एक साहित्य में देखा जा सकता है। इसी के साथ उनका साहित्य प्रेम खानदानी है, जिसमें पुरानी संस्कृति के संस्कार के साथ-साथ नई पीढ़ी के बोल्डनेस और बेपाकपन भी हैं, ठीक उनके अपने ही चरित्र की तरह। उनके साहित्य मे जीवन सत्य की सच्चाई का दर्शन प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। वे न किसी से डरती हैं और न ही अपने पात्रों को किसी पर आश्रित और डरा हुआ दिखाती हैं, इसी के साथ अल्पना मिश्र हिंदी का अपरंपरागत लेखिका भी मानी जाती हैं। नामी खानदान (द्विवेदी खानदान) से होते हुए भी अल्पना मिश्र ने अपनी एक नई पहचान बनाई है / सामने लाई है। मुख्य रूप से हमने अल्पना जी के साहित्य में महिलाओं को नई राह और पुरानी रूढ़ियों के पिंजरे को तोड़ बाहर निकलने का रास्ता दिखाते हुए देखा है।

सम्मान : शैलेश मटियानी स्मृति कथा सम्मान; परिवेश सम्मान; राष्ट्रीय रचनाकार सम्मान, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता का सम्मान; शक्ति सम्मान, प्रेमचंद कथा सम्मान, वनमाली कथा सम्मान आदि से अल्पनाजी विभूषित हुई हैं।

'अस्थि फूल' केवल एक उपन्यास नहीं है अपितु यह एक युग की यात्रा है, जो इतने उतार-चढ़ाव को दर्शाता है और नए युग की यात्रा की कोशिश व माँग करता है। 'अस्थि फूल' पुरुष समाज की छाँव को छोड़ यह मातृत्व की माँग है। इसमें आंचलिक गीत है तो संस्कृतियों का माहौल भी है,

नक्सलवाद है तो वर्गों में मतभेद भी हैं, राजनीतिक दृष्टिकोण तथा आंदोलन की माँग की गूँज है, तो नारी को एक वस्तु के रूप में उसका उपयोग कर फेंक देना भी है। नारी उन फूलों के रूप में दिखाई गई है जिसे हमेश कुचला जाता है तथा पुरुष /मनुष्य उस कसाई के समान है जो निर्दोष रूप से उन बेजुबान बकरों का वध करता है। 'अस्थि फूल' द्वारा झारखंड के नए राज्य बनने व वहाँ की आदिवासी आंचलिक सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थिति; नक्सलवाद एवं लिंग भेद तथा औरतों एवं बालिकाओं की तस्करी, उनका शारीरिक रूप से उपयोग व शोषण और एक वस्तु के रूप में प्रयोग कर उनके पतन को वर्तमान में समझने की पीढ़ी दर पीढ़ी की कथा है। इस उपन्यास में वे सभी महिलाएँ हैं जो इतनी यातनाएँ पाकर भी लड़ने को तैयार हैं और अंत में घरेलू हिंसा व कई पुरुषों द्वारा शारीरिक हमले का सामना करते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेती हैं। इस उपन्यास में अनेक रूपकों का प्रयोग किया गया है। 'फूल' उन मादाओं के लिए उपयोग किया गया है जो बचपन से ही शारीरिक छेड़छाड़ व पुरुषो के द्वारा बलात्कार का सामना करती हैं। उपन्यास दर्शाता है कि पुरुष भूखे शेरों की तरह हैं जो अपनी यौन भूख पर मादाओं को खाने के लिए तत्पर हैं। कुछ ही ऐस लोग हैं जो इन महिलाओं की मदद के लिए आगे आते हैं। लेकिन समाज उससे बड़ा है, और उस अच्छाई को खाकर फिर से अंधेरा कर देता है। उपन्यास गरीबी की एक और समस्या को भी दर्शाता है। यह उपन्यास पूरी तरह से वासना, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, झारखंड और ग्रामीण जीवन व क्षेत्रों की ओछी राजनीति से भरा है। उपन्यास में नग्न राजनीतिक स्थिति व हरियाणा राज्य के संपन्न पुरुष समाज का नारी को वस्तु की तरह इस्तेमाल करनेवाला असली चेहरा दिखाता है।

आंचलिकता -यह उपन्यास झारखंड के ग्रामीण जीवन और आदिवासी समुदाय की पुरानी संस्कृति के सार से भरा हुआ है। इस उपन्यास में लेखक ने कई पुराने सांस्कृतिक गीतों के साथ-साथ स्थानीय भाषा का भी प्रयोग किया है, जो भारत की पुरानी समृद्ध विरासत को महत्वपूर्ण बनाता है। महिला उत्पीड़न भी एक कटु सच्चाई का हिस्सा है, जिसे इस उपन्यास में समाप्त करने की माँग की गयी है। इस उपन्यास में ग्रामीण जनजाति समुदाय का चित्रण है जो जंगल और वहाँ की ज़मीन पर निर्भर है। लेखिका ने नर को जंगली पशु के रूप में और नारी को कोमल स्वभाव के रूप में चित्रित किया है।

राजनीतिक - 'अस्थि फूल' राजनीतिक दलों की सच्चाई को दर्शाता है, जो खेल खेलते हैं जहाँ वे शक्तियाँ प्राप्त करने के बाद राक्षस बन जाते हैं। वे ग्रामीणों का शोषण करते है क्योंकि वे लोग अधिकार और बाहरी समाज को नहीं जानते। उपन्यास कठोर राजनीतिक-व्यक्तिगत मुद्दों को दर्शाता है जहाँ अमीर लोग गरीब ग्रामीणों का उपयोग करते हैं। राजनीतिक दल भ्रष्टाचार में शामिल हैं और आम लोगों का खून चुसना ही उनका काम बन गया है।

स्त्री उन्मुख समस्याएँ- उपन्यास दिखाता है की सभी महिलाओं की स्थिति व हक़ीक़त समान है, चाहे वह गाँव की स्त्री हो या शहर की। आज का युग पुरुष प्रधान है, जो महिलाओं की सत्ता पर राज करता है और उन्हें अपने कब्जे में रखता है। महिला समाज के बारे में नहीं सोच सकती, खुद के बारे में नहीं सोच सकती, यहाँ तक कि एक बेटी को जन्म देना भी नहीं सोच सकती। पुरुष प्रधान समाज हमेशा महिलाओ पर हावी रहा है

और उसके साथ हमेशा एक जानवर की तरह व्यवहार करता आया है। इसके साथ ही आधुनिक शिक्षित नारियाँ बेहतर हैं कि वे अपने अधिकारों को जानें और विषाक्त संबंधों को पूरी मर्यादा के साथ छोड़ दें। लेकिन गाँवों और अशिक्षित महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं है और वे पुरुषों द्वारा चीज़ों के रूप में इस्तेमाल होती आई हैं।

नौकरी के लिए प्रवास/ स्थानांतरण - वैश्वीकरण या किसी भी प्रकार के विकास के कारण परिवर्तन होता है। यही परिवर्तन जीवन है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग विकास तथा परिवार के सदस्यों की खुशी के लिए गाँवों को छोड़ देते हैं। आज के समय में यह आम बात है। लेकिन लेखिका हमें दिखाती हैं कि सरकार उन लोगों के लिए कुछ नहीं कर रही है जो वंचित वर्ग से हैं और बेहतर जीवन शैली के लिए कुछ चाहते हैं। यह उन्हें दूसरे शहर में ले जाता है। राज्य के विभाजन व सरकार द्वारा वनों का अधिग्रहण करने के बाद मुख्य चिंता और समस्या जिसका स्थानीय निवासियों ने सामना किया है वह है नौकरी के लिए प्रवास/ स्थानांतरण। इस प्रक्रिया में वे अपना घर छोड़ देते हैं और सरकार उनसे सब कुछ छीन लेती है। वे अपनी मातृभूमि से वहां की जड़ों से अलग हो जाते हैं।

पितृसत्तात्मकता पर प्रहार-उपन्यास रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक समाज पर सवाल उठाता है जो अपने भविष्य वंश के नाम पर एक लड़के की माँग करता है, लेकिन इसके लिए एक लड़की नहीं चाहता है। वे भविष्य, अपनी वंश परंपरा के लिए एक बच्चे को गर्भ धारण करने के लिए एक मोल की स्त्री का उपयोग करते हैं। ये किराये की औरतें सिर्फ मर्दाना यौन इच्छाओं की पूर्ति तक सिमित हैं। वह एक व्यक्ति की महिला नहीं है, वह एक वस्तु की तरह है जिसका उपयोग हर कोई करता है। समाज के पुरुष उसके साथ जानवर की तरह व्यवहार करते हैं। उसके प्रति कोई भावना नहीं, कोई प्यार के जज़्बात नहीं वे केवल उसका शरीर चाहते हैं। उसके शरीर का उपयोग करते समय फूल की तरह कुचल देते हैं। वे जिस तरह देवी की इज़्जत करते हैं, वैसे औरतों की इज़्ज़त क्यों नहीं करते।

मातृसत्तात्मक का सवाल -यह दुनिया क्यों नहीं स्वीकार करती है लड़की/ नारी प्रधान समाज को? क्यों दुनिया हमेशा शादी के लिए औरत को चाहती है, लेकिन बेटी नहीं चाहती। जननी जन्म देती है, सृजन करती है तो क्यों उसे निर्णय लेने की अनुमति नहीं दी जाती है? क्यों उसे बेटी पैदा करने की अनुमति नहीं दी जाती है। लेखिका द्वारा पूछे गए इस प्रकार के प्रश्न विचारणीय हैं। जिस तरह प्रकृति ने लोगों को बहुत कुछ दिया है उसी तरह से महिलाओं ने इस समाज को बहुत कुछ दिया है। लेकिन बदले में उसे हमेशा नफ़रत, सपनों का मरना आदि ही मिले हैं। इस तरह महिलाएँ जन्म देती हैं और दुनिया को एक योगदान देती हैं। फिर भी पुरुष-प्रधान समाज पुरुष को अधिक श्रेष्ठ समझता है और जो करना चाहता है वह करता है। इसलिए मातृसत्तात्मक समाज और संस्कृति की ज़रूरत है।

अस्मिता पर सवाल - इस उपन्यास में एक स्त्री को पृथ्वी के रूप में दिखाया गया है जिसका अर्थ है कि उसके पास भविष्य को बनाने/ निर्माण करने की शक्ति है। लेकिन पुरुष उसके साथ खिलवाड़ कर रहा है। प्रकृति से खेलना संसार से खेलना है। पुरुष स्त्री को केवल एक वस्तु के रूप में जानता है तथा उसका उपयोग करता है, जबकि स्त्री उस दुपहिया वाहन के समान है जिसमें एक पहिये के बिना दूसरा कुछ भी नहीं है। महिलाओं

की पहचान, अस्मिता खतरे में है।

सिस्टम (प्रणाली) पर तंज- उपन्यास पूरी तरह प्रणाली की कडुआहट व यातनाओं से भरा हुआ है। जहाँ पुलिस को चाहिए कि वह बच्चों की सुरक्षा करे, लेकिन उनके साथ रेप जैसे काम कर रहे हैं ऐसे कई उदाहरण हैं इस उपन्यास में, जो यह बताते हैं कि व्यवस्था पर हमेशा पुरुष प्रधान समाज का शासन रहा है और वह हमेशा लोगों को लूटता ही रहा है। इस प्रकार की व्यवस्था की मुख्य समस्या अशिक्षित सभ्यता है, क्योंकि व्यवस्था हमेशा उन लोगों को बेवकूफ बनाने की कोशिश करती है जो अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होते हैं। इसलिए नागरिक यह जानने की माँग करते हैं कि शिक्षा कैसे प्राप्त की जाए ताकि वे उच्च स्थानों पर पहुँच सकें और अपनी संस्कृति और समाज को संरक्षित और संरक्षित कर सकें।

आदिवासी समाज- 'अस्थि फूल' आदिवासी समुदाय और उनके पारंपरिक गीतों, भाषाओं का यथातथ्य चित्रण है। आदिवासी भारत वर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज हैं जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है। ये वे प्राचीन लोग हैं जिनके नैतिक अधिकार और दावे हज़ारों वर्ष पुराने हैं। साथ ही इस उपन्यास में बहुत कुछ है,, जो क्षेत्रीयता-आंचलिकता को दर्शाता है। और आदिवासी पारंपरिकता, उतनी ही अनोखी है जितनी कि आदिवासी समुदाय।

आधुनिक संस्कृति / दुनिया -उपन्यास कुछ आधुनिक संस्कृति के साथ-साथ आधुनिक वास्तविकता को भी दर्शाता है। पुरानी संस्कृति और समृद्ध विरासत हमेशा टकराती रहती है क्योंकि इतिहास नई माँग करता है। लोग नैतिकता के बिना बदलाव की माँग करते हैं। इस उपन्यास में लेखिका आधुनिक संस्कृति और समाज को चुनौती देती हैं, क्योंकि हम उस युग में हैं जहाँ संशोधन और आधुनिक संस्कृति की माँग तो स्वीकार्य है, लेकिन पुरुष प्रधान नैतिक मूल्यों की ओर उन्मुखीकरण के बिना। वही इस उपन्यास की चुनौती है।

निष्कर्ष: "अस्थि फूल" मनोरंजन का उपन्यास नहीं है, यह उपन्यास पाठकों के मन को विचारों के लिए खोलता है। यह भारत के आम लोगों, ग्रामीणों व स्त्रियों को जागरूक करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसके ज़रिए हम उनसे जानवर, रंडी तथा गुलाम की तरह नहीं बल्कि इंसान की तरह व्यवहार करें। यह उपन्यास पूरी तरह से एक राजनीतिक-सामाजिक उपन्यास है। इसे अल्पना मिश्र ने खूबसूरती से लिखा है। लेखिका ने उपन्यास में बात की है कि कैसे समाज में स्त्री और वंचित वर्ग के प्रति कटुता है, समाज गरीब लड़कियों का कैसे इस्तेमाल करता है और कैसे मानव प्राकृतिक संसाधनों और उनकी पुरानी संस्कृति और आदिवासी समुदाय को छीन तथा नष्ट कर रहा है। इसी प्रकार नर भूखा मनुष्य बना हुआ है, जो निरपराध स्त्रियों और दरिद्रों को खा रहा है और उनके जीने का अधिकार छीन रहा है। साथ ही लेखिका ने राजनेता और सरकार का नंगा चेहरा दिखाया है, जहाँ वे सभी रक्षक के बजाय भक्षक बन बेठे हैं, जो ज़'रूरतमंद गरीब लोगों की मदद करने के बजाए उनका शोषण करने में खुश हो रहे हैं। सभी राजनेता सर्कस के रिंग मास्टर बन गए हैं जो अपनी शक्ति की छड़ी से मानव को प्रताड़ित कर रहे हैं और उनके हालात पर हंस रहे हैं।

संदर्भ:

1. अल्पना मिश्र, अस्थि फूल, राजकमल

प्रकाशन, 2019.

2. अल्पना मिश्र - विकिपीडिया. (n.d.). अल्पना मिश्र - विकिपीडिया.
3. अल्पना मिश्र का व्यक्तित्व, हिंदी समय महात्मा गांधी, अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का अभिक्रम.

◆ अभिषेक शर्मा
अकादमिक काउंसलर/ सहायक प्रोफेसर
सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

जूनियर परियोजना सलाहकार
राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान
asharma19may@gmail.com
फोन :9953883142

अन्नू शर्मा
रिसर्च स्कॉलर, संतोष डीम्ड यूनिवर्सिटी
aaniyasharma2354@gmail.com
फोन :8860697891

समकालीन हिन्दी उपन्यास में किन्नर विमर्श

◆ डॉ.राजेश कुमार आर

प्रस्तावना

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य में अन्य विमर्शों के समांतर एक नया विमर्श अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है- वह है किन्नर विमर्श। समाज के द्वारा तिरस्कृत किये गये लोगों का वर्ग किन्नर समुदाय के नाम से जाना जाता है। समकालीन हिन्दी के अनगिनत लेखकों ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों के द्वारा किन्नर समुदाय को समाज की मुख्यधारा में लाने की कोशिश की है।

'किन्नर' शब्द ऐसे समाज के लिए प्रयुक्त होता है जो लैंगिक रुप से न नर होते हैं न मादा। इस शब्द को सुनते ही हमारे मानस पटल पर समाज के ऐसे लोगों की छवि उभरकर आती है जिसे हम किन्नर, हिजड़ा, मौसी,पावैया, छक्का,मेहला,नपुंसक, थर्ड जेंडर के नामों से जानते हैं। कुछ शारीरिक विकृतियों एवं भावनात्मक रुप से अलग संवेदना रखने के कारण इन्हें समाज से पृथक क्यों रखा जाए ? हमारे समाज में एक इंसान को इंसान के रूप में तब तक स्वीकार नहीं किया जाता जब तक वह पूर्ण रूप से स्त्री या पुरुष की कसौटी में खरे नहीं आते।

बीज शब्द - किन्नर, किन्नर विमर्श।

हिंदी में किन्नर समुदाय पर केन्द्रित पंकज विष्ट के 'पंखवाली नाव', नीरजा माधव कृत 'यमदीप', अनुसूइया त्यागी कृत 'मैं भी औरत हूँ', महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा', प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली', निर्मला भुराड़िया कृत 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा' तथा महेंद्र भीष्म कृत 'मैं पायल' आदि उपन्यास प्रकाश में आए हैं।

पंकज बिष्ट एक संवेदनशील परिवेश और समाज के सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध उपन्यासकार हैं। 'पंखवाली नाव' उपन्यास यातना, संघर्ष और जिजीविषा की अनवरत यात्रा है। पंकज बिष्ट अपनी पीढ़ी के सम्भवतः अकेले ऐसे लेखक हैं

जिनकी रचनाओं में हमारे समकालीन समाज के बदलते नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक मूल्यों की पड़ताल की कोशिश बड़े पैमाने पर नज़र आती है। उनकी रचनाओं का सरोकार मुख्यतः नैतिक पक्षधरता है, जो आधुनिकता और परम्परा के टकरावों और परिणामों की पृष्ठभूमि में आकार लेती है। वे मानव सम्बन्धों को किस संवेदनशीलता, समझ और सहृदयता से अभिव्यक्त करते हैं, उनकी रचनाएँ इसके प्रमाण हैं। ये रचनाएँ व्यक्ति और समाज के आपसी सम्बन्धों की टकराहट और उससे उपजी जटिलताओं की कई अन्तर्धाराओं को अनजाने ही पूरी संश्लिष्टता में अभिव्यक्त करती चलती हैं। पंकज बिष्ट का छोटा-सा उपन्यास 'पंखवाली नाव' उसी परम्परा की अगली कड़ी है। इसमें यौनिकता से सम्बन्धित नैतिकता - अनैतिकता के कई सवालों से पाठक रूबरू होते हैं। यौन सम्बन्धों के दबावों और उनके भटकावों जैसे नाज़ुक और संवेदनशील विषय को लेकर लिखी गई यह रचना मूलतः मानवीय प्रकृति की पड़ताल करने के साथ ही साथ विषय की नवीनता, लेखकीय अन्तर्दृष्टि, वस्तुनिष्ठता और मार्मिकता के लिए विशिष्ट कही जा सकती है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में नीरजा माधव असाधारण सिद्धि- सम्पन्न लेखिका हैं। उनकी विचार-विदग्धता, भाव-प्रवणता, अनछुए विषयों का वैविध्य आदि उन्हें अपने समय के अन्य रचनाकारों से अलग रेखांकित करते हैं। एक अनछुए विषय पर लिखा गया अप्रतिम और पठनीय उपन्यास है 'यमदीप'। किन्नरों की सामाजिक भूमिका की ओर नीरजा माधव ने 'यमदीप' उपन्यास में पाठकों का ध्यान केंद्रित किया है।

'यमदीप' उपन्यास का कथानक हिजड़ा नाजबीबी के इर्द-गिर्द घूमता है। साधारण लोग हिजड़ों को दूर रहना ही पसंद करते हैं। एक बार नाज बीबी और उनकी सहेलियों ने मिलकर एक पागल औरत की मदद की। जब वह औरत प्रसव पीड़ा में तड़प रही थी तब आस पास के साधारण लोग उनकी सहायता करने में हिचकते थे। उस समय इन हिजड़ों ने ही उनकी प्रसूति में सहायता दी। प्रसूति के बाद वह पागल औरत मर जाती है तो उस नन्हे बच्चे को वहाँ छोड़ आने का मन न होने के कारण ये हिजडे उसे साथ लेकर अपनी बस्ती की ओर चल पड़े। 'यमदीप' उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार नीरजा माधव यह बताना चाहती हैं कि साधारण लोग कितने संवेदन शून्य हैं।

किन्नर प्राचीन काल से आज तक छल - कपट, उपेक्षा, शोषण, तिरस्कार और अपमान के शिकार होते रहे हैं। यही कारण है कि तथाकथित सभ्य समाज के लोगों पर ये सहज ही विश्वास नहीं कर पाते। समकालीन हिन्दी साहित्य में कविता, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में रचनाकार किन्नर समाज का महत्व और किन्नरों के आदर-सम्मान की ज़रूरत आदि का विस्तार देते हुए उनके प्रति जो अन्याय हो रहा है उसका विरोध करते हैं और प्रतिरोध का रास्ता भी ढूँढते हैं। हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श अपनी शैशवावस्था में है। साहित्यिक जगत जब तक इनकी वास्तविक, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति नहीं करेगा, इनकी मानसिक एवं शारीरिक कठिनाइयों की समस्याओं के ज्ञान से वंचित रहेगा, तब तक यह विमर्श पाठक की रूह को छू नहीं पाएगा।

'मैं पायल' महेंद्र भीष्म का जीवनीपरक लघु उपन्यास है। उपन्यासकार ने लखनऊ के किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन-संघर्ष को आधार बनाकर मैं पायल' उपन्यास के ताने-बाने बाँधे हैं। पायल यानी जुगनी का जन्म क्षत्रिय परिवार में हुआ था। जन्म के बाद पिता राम बहादुर सिंह को पता चलता है कि उसकी बच्ची जुगनी किन्नर है तो वह बहुत ही दुखी हो जाता है। 'मैं पायल' उपन्यास ऐसे ही एक किन्नर की कथा है जो अभिशप्त है दर-दर की ठोकरें खाने के लिए, अपनों से अलग-रहने के लिए, कभी भीख माँगकर तो कभी नाच-गाकर गुज़र-बसर करने के लिए।

प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में ज़रूर पायल और किन्नर समुदाय की व्यथा-यातना-संघर्ष है, लेकिन उसके चतुर्दिक परिक्रमा-वृत्त में पूरा समाज, व्यवस्था और व्यक्ति के अंदर छिपी कलुषित प्रवृत्तियाँ, स्त्री की नियति, कच्चे बाल मन की यौनिक जिज्ञासाएँ, प्रेम के गहरे अर्थ, देह की ज़रूरत, मानवीय मूल्य,नैतिक मूल्यों की निरर्थकता, अमानवीय सामाजिक विषमता, गरीबी-अभाव, भूख की त्रासदी, भ्रष्टाचार, बच्चों-किशोरों के अपराध में लिप्तता के कारण, निस्वार्थ प्रेम, सदाशयता, माँ की ममतामयी छाँह की अपरिहार्यता और उसे महत्व देने की ज़रूरत जैसे अनेक चिंतनीय प्रश्न उठाए गए हैं।

निष्कर्ष :

किन्नर प्राचीन काल से आज तक छल - कपट, उपेक्षा, शोषण, तिरस्कार और अपमान के शिकार होते रहे हैं। यही कारण है कि तथाकथित सभ्य समाज के लोगों पर ये सहज ही विश्वास नहीं कर पाते। समकालीन हिन्दी साहित्य में कविता, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में रचनाकारों ने किन्नर समाज का महत्व और किन्नरों के आदर-सम्मान की ज़रूरत आदि का विस्तार देते हुए उनके प्रति जो अन्याय हो रहा है उसका विरोध करते हैं और प्रतिरोध का रास्ता भी ढूँढते हैं। हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श अपनी शैशवावस्था में है। साहित्यिक जगत जब तक इनकी वास्तविक और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति नहीं करेगा, इनकी मानसिक एवं शारीरिक कठिनाइयों की समस्याओं के ज्ञान से वंचित रहेगा तब तक यह विमर्श पाठक की रूह को छू नहीं पाएगा।

संदर्भ ग्रंथ

1.हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर समाज,डां. दिलीप मेहरासंपादक), माया प्रकाशन,कानपुर।

2. यमदीप, नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन,नई दिल्ली, 2002

3. मैं पायल, महेंद्र भीष्म, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016

4. पंखवाली नाव, पंकज बिष्ट, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014

◆ असिस्टेंट प्रोफ़ेसोर,
हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम,
केरल।

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श
(दलित कविताओं के विशेष संदर्भ में)

◆ डॉ.धन्या बी

शोध सार

बडी शर्मिंदा की बात है कि विश्व बंधुता का संदेश देनेवाला भारतीय समाज, आज भी भेदभाव की कठोर बीमारियों से ग्रसित है । भारतीय समाज प्राचीन काल से ही वर्ण-व्यवस्था द्वारा नियंत्रित रहा है। प्राचीन काल से ही शूद्रों या अछूतों को वेदाध्ययन, पठन - पाठन, यज्ञ आदि से वंचित करके उच्चवर्ग या सवर्ण निम्नवर्ग को प्राप्त शिक्षा-अध्ययन के अधिकार को दलितों से छीन लिया गया। इस प्रकार उन्हें अंधकार में डाल दिया। खेद की बात यह है कि वर्तमान काल में भी उनकी हालत वैसे ही आगे बढ़ती हैं। शिक्षा का अधिकार निम्नवर्ग को प्राप्त होने पर भी, हमारे समाज के दृष्टिकोण में पूर्ण रूप से बदलाव नहीं आया है। समाज की इस क्रूर व्यवस्था द्वारा व्यथित, पीड़ित और संघर्ष में पडे दलितों के संवेदनात्मक चित्रण को हिंदी लेखकों ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है और समाज के सम्मुख उनकी वेदना भरा जीवन प्रस्तुत करके इस विषय पर समाज की आँखें खोलने की कोशिश करते रहते हैं। साहित्य समाज के दर्पण होने के नाते एक हद तक उनका प्रयत्न सफल हो गया है।

बीज शब्द : दलित, संस्कृति , वेदाध्ययन , आँखें खोलना, संवेदना, जंजीर बाँधना

मूल आलेख

सदियों से पीड़ित और अपने सभी अधिकारों से वंचित, दमित वर्ग सभ्य-सवर्ण समाज के दुर्व्यवहारों के कारण आगे आने से रोके हुए थे। वे पिछड़े या दलित लोग, समाज - सुधारकों और साहित्यकारों के परिश्रम के ज़रिए अपने खोए हुए अधिकार को वापस मिलने कीकोशिश करते रहते हैं। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक कवियों-साहित्यकारों द्वारा इसका प्रयास चलता रहा है। आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, आदि अनेक लेखकों ने दलितों से जुड़ी समस्याओं को बड़ी ईमानदारी से अपनी रचनाओं में उठाया और अपने लेखन का महत्त्वपूर्ण प्रश्न बना दिया।

'दलित' शब्द का उत्पत्ति:

"'दलित ' शब्द की उत्पत्ति 'दल' धातु से हुई, जिसके अर्थ पिछड़ा, शोषित, रौंदा हुआ, अछूत, अविकसित आदि हैं। अस्पृश्य, अंत्यज, दास, हरिजन, शूद्र आदि भी कई नाम उन्हें दिए हैं। वर्णव्यवस्था, धर्मव्यवस्था को नकारनेवाले विद्रोही, संघर्षरत समाज दलित है । "[1]

हिंदी में दलित साहित्य:

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य का प्रारंभ कविताओं और कहानियों के माध्यम से हुआ । कविता मानव मन की चेतना का प्रतीक है। ' दलित साहित्य' का विवेचन सर्वप्रथम सन् 1958 में दलितों के एकमात्र पत्र 'प्रबुद्ध भारत' नामक साप्ताहिक ने किया। हिंदी में दलित

साहित्य का चित्रण प्रेमचंदकालीन साहित्य से शुरू होता है।

दलित कविता:

कविता मानव मन की चेतना का प्रतीक है। अनेक दलित साहित्यकारों ने दलित पीड़ा को कविता की शैली में प्रस्तुत किया। आदिकाल और भक्तिकाल के कवियों की रचनाओं से इसके सख्त प्रमाण मिलते हैं। आदिकाल में सिद्धों और नाथों की रचनाओं में और भक्तिकाल में कबीर दास, रैदास आदि की रचनाओं में इसके प्रमाण हैं । रैदास जन्म से दलित हैं, इसलिए उन्हें पहला दलित कवि मानना कोई अनुचित बात नहीं होगी।

आधुनिक हिंदी साहित्य में हीराडोम द्वारा रचित 'अछूत की शिकायत' को पहली दलित कविता कहते हैं, जो सन् 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई ।

हिंदी साहित्य के प्रमुख दलित कवि:

हिंदी दलित कविता शब्दों का भंडार नहीं, नारों का स्वरूप देनेवाली है। इसलिए कवियों ने आक्रोश का सहारा लेकर ही अपना काव्य सृजन किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में दलितों की सामाजिक, आर्थिक,राजनैतिक और धार्मिक पीडाओं की अभिव्यक्ति मार्मिक और संवेदनात्मक ढंग से कविताओं के ज़रिए जन सामान्य तक पहुँच दी है। दलित कवियों में प्रमुख हैं- ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम,सूरजपाल चौहान, कंवल भारती, डॉ.धर्मवीर, डॉ.सुशीला टाकभोरे आदि ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि-

दलितों की पीड़ा का सजीव चित्रांकन, विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों का गंभीर और दर्दभरा चित्रण का चित्रण 'बस ! बहुत हो चुका' कविता संग्रह में देख सकते हैं।

"जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गंदगी से भरी बाल्टी -कनस्तर किसी
हाथ में मेरी रगों में ,
दहकने लगते हैं।
यातनाओं के कई हज़ार वर्ष एक साथ ।
आँखों में उतर आता है ।
इतिहास का स्याहपन
अपनी आत्मघाती कुटिलताओं के साथ
असंख्य मूक पीड़ाएँ , कसम सा
रही हैं।
मुखर होने केलिए रोष से भरी हुई ।
बस ! बहुत हो चुका ।
चुप रहना । " [2]

आपकी कविताएँ पाठकों या सवर्ण समाज से सवाल पूछती हैं। 1991 में प्रकाशित 'सदियों का संताप' कविता पाठकों के हृदय में बड़ी घाव लगाती है। इस संग्रह के द्वारा तत्कालीन मुख्य धारा की नींव तोड़ डाली है।

"चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का ।
भूख रोटी की, रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का , खेत ठाकुर का
हल ठाकुर का ,
हल का मूठ पर, हथेली अपनी
फसल ठाकुर की, कुआँ ठाकुर का
खेत - खलिहान ठाकुर के
गली मुहल्ले ठाकुर का ,
फिर अपना क्या ?

गाँव ?

शहर ?

देश ? "[3]

यह भी नहीं, वाल्मीकि जी अपनी कविताओं द्वारा संघर्ष करने की प्रेरणा भी देते हैं। ' धुरी पर घूमती धरती ' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

मोहनदास नैमिशराय-

दलित साहित्य की अस्मिता को बनाये रखने में मोहनदास नैमिशराय का महत्वपूर्ण स्थान है। वे सचमुच दलित आंदोलन के प्रवर्तक हैं। आप स्वयं कहते हैं, "दलित साहित्य में आक्रोश आता है . . . साहित्यकार का उद्देश्य है समतामूलक साहित्य का निर्माण करना। इसका उत्तम दृष्टांत है आपकी कविता 'क्रांति का हथौडा'।

" क्रांति का हथौडा
महलों की पुखता दीवारों को
भले ही न तोड पाए
पर क्रांति की गूँज अभी ज़िन्दा है
यह सब सुनाने के लिए ही
क्रांति की हथौड़ा रुकने न पाए ।
क्रांति मरघडों से नहीं आती ....
क्रांति मरघडों से नहीं आती ....
क्रांति मज़दूर के बदन के पसीने से फूटती है। "[4]

जयप्रकाश कर्दम-

दलित साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी तूलिका चलाकर साहित्यकार और पत्रकार के रूप में विख्यात दलित साहित्यकार हैं जयप्रकाश कर्दम। आप के द्वारा संपादित दलित पत्रिका है 'दलित साहित्य' । आपके प्रमुख काव्य संग्रह हैं- 'तिनका - तिनका आग' , 'बस्तियों से बाहर ' , 'गूँगा नहीं था मैं ' आदि।

" तुम कोठी बंगलों में रहते ,
मैं रहता झोपड पट्टी में
तुम ए .सी कूलर में सोते ,
मैं तपता श्रम की भट्टी में
तुम दूध - मलाई में नहाओ ,
मैं रोटी को मुंहताज रहूं
तुम मालिक मैं नौकर ठहरा ,
फिर समता का संसार
कहाँ है । " [5]

सूरजपाल चौहान-

अलीगढ़ में जन्मे सूरजपाल चौहान मशहूर दलित कवि और कथाकार हैं। 'प्रयास ' उनका प्रमुख काव्य संग्रह है। आपकी 'धन्यवाद शहर' कविता में दलित जीवन के उत्पीड़न का दयनीय चित्रण है। आपकी 'धन्यवाद शहर' कविता की पंक्तियाँ देखिये।

" गाँवों में मैं होता हूँ ,
दलित समाज के विभिन्न रूपों में,
टुकड़े - टुकड़े
अलग - थलगा ,शहरों में ,
हम होते हैं
सिर्फ हम शड्यूल्ट कास्ट । धन्यवाद शहर ,तुमने
मुझमें से हम बनाया
देखने में लगती अच्छी , बहुत अच्छी
पर अन्दर से ही कितनी
घिनौनी और खोखली
उचित समय आने पर ,पकड़ा दी पिता ने
मेरे हाथों में कलम
एक सुरक्षा कवच के रूप में

ब्रह्म राक्षस के , वास से बचने के लिए ।
सचमुच पिता , तुम धन्य हो । " [6]

कंवल भारती-

दलितों की वेदना का यथातथ्य चित्रण करनेवाले लेखक कंवल भारती का एकमात्र काव्य संग्रह है 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ' ।

"यदि वेदों में लिखा होता
ब्राह्मण ब्रह्म के पैर से हुए हैं पैदा ।
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं ।
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? ...
. . . . . .
हमारे खेतों - घरों में दास कर्म करना
तब तुम्हारी निष्ठा क्यों होती । " [7]

डॉ .सुशीला टाकभौरे-

हिंदी दलित साहित्य के लेखन में पुरुष साहित्यकारों के साथ - साथ महिला लेखिकाएँ भी हैं। लेकिन संख्या में कम हैं। उनमें से दलित काव्य रचना के क्षेत्र में प्रमुख हस्ताक्षर हैं डॉ.सुशीला टाकभौरे। आपका प्रमुख काव्य संग्रह है 'तुम ने उसे कब पहचाना'। आपकी राय में समाज स्त्री के साथ हमेशा भेदभाव करता है, मगर वही समाज झूठी संवेदना प्रदर्शित करने पर भी तुला रहता है।

" ओ शबरी के राम ,
आँखें चुराकर संवेदना न दिखाओ
तुम्हीं ने सीता को , धरती में समाया था ।
विश्वास , भक्ति , प्रेम की सीता , बार - बार
धरती में दफनायी जाती है।
इसलिए संसार में ,
पीडा की फसलें उग आती है।
... आज जानकी जान गयी है
अब वह धरती में नहीं ,
आकाश में जाना चाहती है।
देवकी की कन्या की तरह , बिजली सी चमक कर
संवेदना देना चाहती है , हे राम । .....
उसकी अस्मिता के प्रति ,
तुमने जो भेद भाव किया
तुम्हारे देशवासी भी करते हैं
इसलिए देवभूमि के इस देश में,
भूकंप आते रहते हैं ।" [8]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहें, तो उपर्युक्त दलित कवियों के साथ-साथ अन्य अनेक कवि भी अपनी दलित कविताओं के द्वारा समाज से विघटन, जातिवाद तथा विद्वेष की भावना को दूर करना चाहते हैं। साथ ही वे भोगे हुए अपने अनुभवों को गहराई से कविता में व्यक्त करते हैं। वे भाग्यवाद, अवतारवाद, पूर्वजन्म या परंपरावादी साहित्यक प्रवृत्तियों के विरुद्ध रोष, आक्रोश एवं कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं। दलित कविता दलित जीवन का प्रतिबिंब है। इन कविताओं से एक हद तक समाज की आँखें खुली हैं ।

सहायक ग्रंथ

1. दलित साहित्य परंपरा और विन्यास , डॉ.एन सिंह
2. समकालीन साहित्य में प्रतिरोध - सं. डॉ.जयकृष्णन जे, वर्ष 2014, जवाहर पुस्तकालय
3. समकालीन हिंदी कविता का ताप - मान, डॉ.प्रमोद कोवप्रद , जवाहर पुस्तकालय
4 . समकालीन हिंदी साहित्य, प्रो.डॉ. हणमंतराव

पाटील & प्रो.डॉ.सुधाकर शेंडगे, विद्या प्रकाशन, वर्ष 2017
5 . समकालीन हिंदी साहित्य और नए विमर्श, सं. डॉ. प्रमोद कोवप्रद - वर्ष 2015
6. दलित साहित्य की भूमिका, कंवल भारती, परिवर्द्धित संस्करण, इतिहास बोध प्रकाशन
7. समकालीन हिंदी कविता विविध आयाम, सं. डॉ.प्रदीपा कुमारी आर, विद्या प्रकाशन, वर्ष - 2022
8. समकालीन हिंदी साहित्य, प्रो.डॉ. हणमंतराव पाटील, प्रो.डॉ .सुधाकर शेंडगे, विद्या प्रकाशन
9. समकालीन हिंदी साहित्य और नए विमर्श, सं. डॉ . प्रमोद कोवप्रद, जवाहर पुस्तकालय

संदर्भ

1. इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य , डॉ भरत धोंडीराम सागरे , पूजा पब्लिकेशन - 2014 पृ : 9
2. बस बहुत हो चुका ,ओमप्रकाश वाल्मीकी ,पृः79 - 80
.3. सदियों का संताप , ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ -3
4. क्रांति का हथौडा , मोहनदास नैमिशराय , पृ . 80
5. मेरे अधिकार कहाँ हैं, जयप्रकाश कर्दम , गूंगा नहीं था मैं , पृ . 46)
6. धन्यवाद शहर , सूरजपाल चौहान , दलित साहित्य वार्षिकी 2005 , पृ .354)
7. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, कंवल भारती , बोधिसत्व प्रकाशन , पृ . 62)
8. जानकी जान गयी है , डॉ . सुशीला टाकभौरे , तुमने उसे कब पहचाना , वर्ष 1995 , इतिहास बोध प्राशन)

◆सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा
हिन्दी विभाग,
सरकारी कॉलेज, आट्टिंगल ।

पारिस्थितिक सजगता की कविता 'असाध्य वीणा'

◆ **डॉ.जस्टी इम्मानुएल**

परिस्थिति का सरोकार जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ पारस्परिक संबंध से है। जीव समुदायों में शीर्षस्थ मनुष्य अपने इर्द-गिर्द की परिस्थिति का हिस्सा बनकर जीता है। परिस्थिति उसे पालती है रूपायित करती है। मनुष्य के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक पर्यावरण बहुत महत्वपूर्ण है। प्रकृति और मानव के आपसी सहयोग आवश्यक हैं। भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण का पोषण और देखभाल आवश्यक है। स्वस्थ मानव कुल के निर्माण के लिए स्वस्थ वातावरण चाहिए। इसलिए पर्यावरण को स्वस्थ रखना हमारा कर्तव्य है। हर देश के लिए पर्यावरण सजगता अपनी संस्कृति का मूल तत्व है। यह हमारी अपनी संस्कृति का भी मूल तत्व है। प्रकृति प्राणधारा से स्पन्दित होती है, संपूर्ण जगत अर्थात् जीव-

जंतु, वनस्पति, नदी, पहाड़ सब में जीवन है। "जीवन के प्रति पूजा-भावना और संयम की प्रतिष्ठा"[1] भारत की महान संस्कृति का संदेश है। लेकिन विकास की इस रफतार में हम यह तो भूल जाते हैं। पश्चिम की भोगवादी संस्कृति के प्रभाव, शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण मनुष्य और प्रकृति के बीच का सरोकार मित्रवत् समरस भावना टूट गई। तथाकथित विकास की ओर अंधी दौड़ में उसकी यह संवेदना समाप्त हो गई कि प्रकृति एक जीवंत शक्ति है। वे प्रकृति को जड़ वस्तु ही नहीं मानव के भोग विलास और शोषण के लिए बनी-बनाई चीज़ मानते हैं। इसी कारण से आजकल मनुष्य और प्रकृति के बीच के सरोकार की पवित्रता फीका पड़ रही है ।

पाश्चात्य संस्कृति की ओर अंधी दौड़ में विलासिता की ओर आकृष्ट मनुष्य अपने क्षणिक सुख के लिए प्रकृति का बलात्कार करके उसे अपाहिज बनाता है। वैज्ञानिक विकास के इस युग में मानव ने "बायोस्फीयर से टेक्नोस्फीयर"[2] में विस्थापित किया है। प्रकृति से ज़रा भी आत्मीयता न रखनेवाले इस स्फीयर में खड़े होकर मनुष्य शुद्ध वायु और पेयजल के लिए तड़प रहे हैं। तकनीकी की इस नई स्फीयर ने मानव - मानव और मानव - प्रकृति के बीच छिपी आत्मीयता और ईमानदार सरोकार को मिटा दिया है। प्रकृति और मानव के बीच का रिश्ता माँ और संतान जैसा है। वह एक दूसरे से इतना घुल-मिल गया है कि एक का दूसरे से अलग करना मुश्किल है। माँ अपने गर्भस्थ शिशु को अपने रक्त, माँस, हड्डियों, मज्जाओं से शरीर का रूप देती है। प्रकृति उसे संवारती है,उसे एक सुदृढ़ रूप देती है माँ को चूसकर उसका खून पीना उचित नहीं। उसको पालते हुए ही आगे बढ़ना है। मशीनीकरण और प्रौद्योगिकीकरण के प्रभाव से तमाम मानवीय संवेदना से वंचित मनुष्य के मन में इसी खतरनाक स्थिति का अवबोध जगाने में प्रतिबद्ध समकालीन साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृतियों में पारिस्थितिक यथार्थ को अंकित करते हैं। हिंदी साहित्य में अज्ञेय समकालीनता की बुनियाद पर प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं ।अज्ञेय, मुक्तिबोध, निराला जैसी पुरानी पीढ़ी के कवियों पर चर्चा किए बिना समकालीन कविता में गुज़रना मुश्किल है । अज्ञेय ने अपनी कविताओं में जिन-जिन पारिस्थितिक समस्याओं को दर्शाया है ये समस्याएँ आज ज़्यादा प्रासंगिक हैं ।यह आजकल की एक ज्वलंत समस्या है।

भारतीय संस्कृति की महान विरासत पर ज़ोर रखनेवाली कविता है अज्ञेय की 'असाध्य वीणा'। 'आँगन के पार द्वार' संकलन की यह लंबी कविता प्रकृति के प्रति अज्ञेय की आत्मीयता का ज्वलंत प्रमाण है। अज्ञेय की राय में प्रकृति केवल मनुष्य मात्र के लिए नहीं, बल्कि सर्व चराचरों को मनुष्य के बराबर प्रकृति पर समान अधिकार है । पर्यावरण और प्रकृति के संतुलन के लिए जीव जंतुओं की सुरक्षा अत्यंत आवश्यक है।मनुष्य ने अपने वस्तु जगत के निर्माण के लिए प्राकृतिक चीज़ों की मदद ग्रहण की है। मनुष्य को अपना सृजन-कार्य को श्रेष्ठतम बनने के लिए प्रकृति माता का आदर करना चाहिए। किसी भी कलाकृति के निर्माण की कोशिश में उसे पूर्णतम अभिव्यक्ति तक पहुँचाने में कलाकार का संपूर्ण समर्पण भी आवश्यक है। साथ ही जिस मिट्टी से ये चीज़ें

ग्रहण की हैं उसी से गहरा सरोकार भी आवश्यक है। इन सांस्कृतिक आदर्शों के अभाव में तमाम प्रयत्न असफल हो जाते हैं। असाध्य वीणा को प्रियंवद के सामने रखकर राजा प्रियंवद को संबोधित करते हुए असाध्य वीणा की कथा कहते हैं। यह वीणा उत्तराखंड के सघन वन में तपस्या करनेवाले वज्रकीर्ति नामक एक साधक ने एक सुविशाल किरीटी तरु को मंत्रों द्वारा पावन करके वीणा बनाकर राजा को सौंप दिया। साधक का पूरा जीवन उस वीणा के निर्माण में लगा दिया गया । वीणा का निर्माण पूर्ण करने पर साधक की जीवन लीला भी समाप्त हो गई। लेकिन वीणा बजाने में राजा के यहाँ समस्त कलाकार असफल रहे। इसलिए वह असाध्य वीणा हो गई। एक कहानी में रूपायित प्रस्तुत कविता का आरंभ राजा द्वारा केशकंपली प्रियंवद के स्वागत से होता है।

वज्रकीर्ति एक ऐसा कलाकार है जिन्हें प्रकृति और विरासत से गहरा सरोकार है। वीणा के निर्माण के लिए एक किरीटी तरु का इस्तेमाल किया था। वह तरु एक ऐसा महावृक्ष था जिसकी जड़ें पाताल लोक तक जा पहुँची थीं जो अनेक प्राकृतिक चराचरों का आसरा था, जिसके कानों में पर्वत की चोटियाँ अपने रहस्य सुनाती थीं जिसके कंधों अर्थात् डालों पर मेघ अठखेलियाँ करते थे और उसके हाथी की सूँड जैसी डालियाँ हिमपात और वर्षा से जंगल के पशु झुंडों व लघु-वृक्ष समूह की रक्षा करती रहती थीं। उस विशालकाय वक्ष के कोटरों में भालू रहा करते थे, जबकि उसके छाल से अपने स्कंध खुजलाते रहते थे। उसकी सुगंधित जड़ से वासुकी नाग अपना फण टीकाकर सोता था। सैकड़ों वसंत उसके सौंदर्य को संवार रहे थे। वर्षा ऋतुएँ जुगनुओं के माध्यम से वृक्ष की आरती उतारी थी । इर्द-गिर्द की प्रकृति को इस कीरीटी तरु से गहरा सरोकार था।यह तरु भी प्रकृति के तमाम स्पंदनों को अपने में समेटता था। ऐसे तरु को काटना एक साधारण व्यक्ति को असंभव था । भारतीय विरासत के अनुसार महान कर्मों को पूर्ण करने के लिए सच्ची साधना की, सच्चे त्याग की ज़रूरत है। वज्रकीर्ति नामक साधक प्रकृति से उतना सरोकार रखनेवाले आदमी थे जो अपनी ज़िदगी भर की तपस्या से, हठयोग से, अपने समर्पण भाव से बीणा बनाने का वह पवित्र काम पूरा कर सके और वीणा योग्य व्यक्ति को सौंप कर सके। साधक का पूरा जीवन उस बीणा के निर्माण में लगा दिया गया। लेकिन वीणा का निर्माण पूर्ण करने पर उसे प्रयोग में लाने के पहले उन्हें अपनी जीवन लीला समाप्त करनी पड़ी। “राजा रुके साँस लंबी लेकर फिर बोले:

मेरे हार गये सब जाने-माने कलावंत,
सबकी विद्या हो गयी अकारथ दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गई"[3]

वज्रकीर्ति नामक साधक द्वारा बनाई गई वीणा साधने के लिए उससे स्वर-संधान करने के लिए उसके बराबर पवित्र आदमी की आवश्यकता पड़ी। राज्य के तमाम कलाकारों ने उसे बजने की चेष्टा की, लेकिन उसे साधने के लिए वज्रकीर्ति के बराबर पवित्र केशकंबली, गुफागेही, प्रकृतिस्थ प्रियंवद की ज़रूरत होनी पड़ी। प्रियंवद ने उस किरीटी तरु को,उसे पले मिट्टी को, तरु को आसरा बननेवाले तमाम चराचरों को मद्धेनज़र रखते हुए अपने में

समाहित किया।

"केशकंपली गुफा -गेह ने खोला कंबल।
धरती पर चुपचाप विछाया ।
वीणा उस पर रख,पलक पलक मूंद कर प्राण खींच,
करके प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार"[4]

वृक्ष को तात नाम से संबोधन करके उस वृक्ष से गाने की विनती की-

"ओ पूरे झारखंड के अग्रज,
तात, सखा गुरू,आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन ध्वनियों के
वृन्द गान के मूर्त रूप
मैं तुझे सुनूं
देखूं द्याऊं"[5]

तुम झारखंड के समस्त बच्चों के अंग्रज हो तो समस्त वृक्षों के पिता मित्र, गुरु समस्त रक्षक वह आश्रयस्थली रहे हो।

मिट्टी और वृक्ष के प्रति पूजा भावना भारतीय संस्कृति का महान आदर्श है। अज्ञेय यहाँ प्रियंवद के माध्यम से पर्यावरण के प्रति आर्ष भारत संस्कृति के आदर्श की याद दिलाता है। प्रियंवद यहाँ सरलता, अपरिग्रह, त्याग और विनम्रता की भावना से प्रेरणा ग्रहण कर मन शुद्ध करके प्रकृति के संस्कार को अपनाते हुए अहं का स्वाहा करता है-

"मुझको मैं भूल गया हूं।
सुनता हूँ मैं-
पर मैं मुझसे पर शब्दों में लियामान
मैं नहीं नहीं मैं कहीं नहीं!
ओ ये तरु! ओ वन
ओ स्वर संभार।
नादमय संसृति।
ओ रस- प्लावन
मुझे क्षमा कर-भूल अकिंचनता को मेरी
मुझे ओट ले-ढंक ले-छा ले-
ओ शरण्य"[6]

कविता के अंत में प्रियंवद का कलाकार स्वयं शून्य होकर सामाजिक बोध को ग्रहण कर लेता है। प्रकृति के समस्त कणों को अपने में समाहित कर वीणा बजने लगता है ।

"सहसा वीणा झनझना उठी-
संगीतकार की आंखों में खण्डी पिघली ज्वाला -सी
झलक गई-
रोमांच एक बिजली -सा सब के तन दौड़ गया
अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभात
डूब ग्रे सब एक साथ"।[7]

वहाँ खड़े लोगों में से प्रत्येक ने अलग-अलग नाद सुना। सबका दिल अहंभाव और विलासिता का शौक छोड़कर हल्का हो गया।

"रानी ने अलग सुना:
छंटनी बदली में एक कौंध कह गई-
तुम्हारे ये मणिमाणक कंण्ठहार पटवस्त्र ,
मेखला किंकिणी -
सब अंधकार के कण हैं ये! आलोक एक है
प्यार अनन्य!उसी की
विद्धुल्लता घेरती रहती है रस-भार में को
थिरक उसी की छाती पर उस में छिपकर सो जाती है
आश्वस्त,सहज विश्वास भरी ।
रांची

उस एक प्यार साधेगी।"[8]

रानी ने वीणा की झनझनाहट से एक ऐसा संदेश सुना है कि तुम्हारे यह मणि माणिक्य, कंठहार, पटवस्त्र करधनी, मेखला-किंकिणी आदि अज्ञान के कण मात्र हैं। अनन्य ईश्वर ही ज्ञानात्मक आलोक का स्वरूप है। इसके अलावा सब कुछ तामसिक है। रानी के साथ समस्त दरबारियों ने विलासिता के तामसिक स्वरूप को त्यागकर ज्ञानात्मक आलोक का स्वरूप अर्जित किया।

हम प्रकृति से मित्रवत् व्यवहार करें तो, प्रकृति माता को अपनी माँ मानें तो वह साथ देगी। पारिस्थितिक प्रदूषण के इस युग में भी अज्ञेय प्रकृति का आदर करने का संदेश देते हैं। प्रदूषण से दम घुटती असाध्य वीणा रूपी इस पर्यावरण को साफ करने के लिए या बचाने के लिए प्रियंवद जैसे पवित्र साधकों की ज़रूरत है, यही 'असाध्य वीणा' की प्रासंगिकता है।

संदर्भ

1.सांस्कृतिक विरासत - एम.जी.विश्वविद्यालय पृ.105
2.वही, पृ106
3 चुनी हुई कविताएँ: अज्ञेय- पृ 102
4.वही, - पृ 102
5.वही- पृ 104
6. वही - पृ 107-108
7. वही - पृ- 108-109
8. वही - पृ 109

संदर्भ ग्रंथ:

1.चुनी हुई कविताएँ: अज्ञेय-राजपाल प्रकाशन काश्मीर गेट, नई दिल्ली। संस्करण वर्ष-1997।.
2.सांस्कृतिक विरासत - एम.जी विश्वविद्यालय
3. हिंदी अभ्यास पुस्तिका, एच जी प्रकाशन ,नई दिल्ली,संस्करण वर्ष1999।

◆सह आचार्या
अल्फोंसा कालेज, पाला
कोट्टयम जिला, केरल।
ई- मेल:christajoby2002@alphonsacollege.in

हिंदी बालगीत में जेंडर प्रस्तुतीकरण: विश्लेषण

◆डॉ. मधुप्रिया

सार

बालगीत बच्चों के विकास और उनकी प्रारंभिक शिक्षा का एक अनिवार्य अंग है। हिन्दी बालगीत में पुरुषों की खींची गई शक्तिशाली छवि और महिलाओं की संवेदनशील मासूम सहानुभूति, विनम्र और दूसरों की देखभाल करनेवाली छवि जेंडर-भेद को दर्शाती हैं । प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य हिन्दी बालगीत में मौजूद जेंडर-भेद का विश्लेषण करना है। प्रपत्र में इंटरनेट पर उपलब्ध बालगीतों का चयन और उनका विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द: बालगीत, जेंडर-भेद, विश्लेषण, नारीवादी विचारधारा ।

परिचय- माता-पिता द्वारा बच्चों को पुरानी कविताओं का सुनाया जाना बच्चों की शिक्षा का पहला महत्वपूर्ण कदम है। बालगीत का उपयोग लंबे समय से शिशुओं को आराम करने और मनोरंजन के लिए एक उपकरण के रूप में किया जाता है। ये कविताएँ मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक संरचना एवं जेंडर-भेद को भी उजागर करती हैं।

पितृसतात्मक समाज का प्रभाव बालगीत में भी देखने को मिलता है, जिसमें अधिकांशः पुरुष को कमाऊ सदस्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और महिला को कुशल गृहिणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही लड़कियों का प्रस्तुतीकरण भी इसी रूप में होता है कि भविष्य में वे भी अपनी माता की परंपरा को बढ़ाते हुए घरेलू कार्यों तक ही सीमित रहें। इसके अलावा, कुछ ऐसे बालगीत भी हैं जो सौंदर्य के मानकों को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो बाद में सौंदर्य मानदंड के रूप में स्थापित हो जाते हैं। कुछ अध्ययन हुए हैं जो कि कविताओं, परियों की कहानियों और अन्य शैलियों की भाषा में जेंडर से संबंधित हैं। फिर भी, बालगीत में जेंडर-भेद पर किए गए अध्ययन बहुत कम पाए जाते हैं।

वर्तमान समय प्रौद्योगिकी का है। इस दौर में जहाँ विश्व की सभी चीज़ों को प्रौद्योगिकी से जोड़ा जा रहा है वहीं भाषा भी इससे अछूती नहीं है। हर भाषाओं पर प्रौद्योगिकी से संबंधित कार्य हो रहे हैं, नए-नए अनुप्रयोगों(मशीन अनुवाद, वाक प्रौद्योगिकी, पाठ संसाधन आदि) का विकास किया जा रहा है। इंटरनेट पर विभिन्न भाषाओं में बालगीतों का संग्रह मौजूद है, जो शुरुआत में तो अँग्रेज़ी भाषा के गीतों तक ही सीमित थे, परंतु वर्तमान में भारतीय भाषाओं में भी अधिक संख्या में उपलब्ध हैं। आज जिनके घर में छोटे बच्चे हैं वे किताबों के साथ-साथ इंटरनेट के माध्यम से भी अपने बच्चों को बालगीत सुनाते हैं। इंटरनेट पर मौजूद इन बालगीतों का प्रस्तुतीकरण जेंडर संरचना को बाल मन में बैठाने में किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है?-- बच्चे कार्य-विभाजन की धारणा किस प्रकार बनाते हैं? इन बिंदुओं पर प्रस्तुत प्रपत्र में विस्तार से चर्चा की गई है, जिसके लिए इंटरनेट पर उपलब्ध बालगीतों का चयन किया गया है।

भाषा में जेंडर - भाषा संप्रेषण का माध्यम है। गोडार्ड और पैटरसन (2001: 6) इस विचार को इंगित करते हैं कि जब हम एक भाषा का अधिगम करते हैं तो, हम सोच के नए तरीके हासिल करते हैं। इस विचार पर भी ज़ोर दिया गया है कि भाषा को कोड और डिकोड करना केवल एक शुद्ध भाषाई मामला नहीं है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक और साथ ही वैचारिक भी है। जेंडर आधारित भूमिकाओं का व्यक्ति में विकास बचपन से ही शुरू हो जाता है जिसमें भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नारीवादी भाषाविदों ने भाषा की भूमिका पर ज़ोर देते हुए बताया है कि पितृसत्तात्मक शक्तियाँ जो कि सामाजिक असमानता को इंगित करती हैं, को बनाए रखने और लागू करने में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, ''भाषा पुरुषों और महिलाओं को अलग-अलग तरह से परिभाषित करती है''(वुड, 2005: पृ.106)। 'जेंडर' शब्द सामाजिक रूप से निर्मित है। यह पुरुष और महिला दोनों के बीच एक स्पष्ट विभाजन का वर्णन करता है। बेर्नट ने कहा है कि, "जेंडर रूढ़िवादिता की धारणा या अपेक्षाएँ हैं कि पुरुष और महिलाएँ अपनी गतिविधियों, व्यक्तित्व विशेषताओं या अन्य विशेषताओं में कैसे एक दूसरे से भिन्न हैं।" (1997 : पृ.565)

बालगीत के माध्यम से बच्चों को भाषा की दुनिया में प्रवेश कराया जाता है। इसके माध्यम से बच्चे अपने परिवेश, वातावरण और सामाजिक-

संरचना से परिचित होते हैं। इसके माध्यम से दिया गया संदेश उनके दिमाग पर लंबे समय तक स्थायी छाप छोड़ता है। बच्चे समझ पाते हैं कि माँ किस प्रकार रसोई और घर के कार्यों में निपुण हैं। इसीप्रकार पिता भी बाहर के कार्यों में दक्ष हैं ।घर की आर्थिक व्यवस्था को पिता ही संभालते हैं। बच्चों में कार्य-विभाजन की धारणा लंबे समय तक बरकरार रहती है। इसके आगे भी उनकी दुनिया है। एम.एस. हक और एम.एच. खान (2004) बताते हैं कि जेंडर-भेद को अक्सर नज़रअंदाज़ किया जाता है। इसका कारण यह है कि जेंडर-भेद को पारंपरिक रूप दिया गया है और परंपरा पर शायद ही कभी सवाल उठाए जाते हैं। बालगीत इन जेंडर संबंधी रूढ़ियों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रायोगिक अनुसंधान से पता चलता है कि बच्चों की जेंडर-भेद पहचान का विकास उनकी पठन सामग्री से भी बहुत प्रभावित होता है। कमला भसीन भारतीय नारीवादी और सामाजिक अधिकार कार्यकर्ता हैं। 1980 के दशक की शुरुआत में, आप छोटे बच्चों के लिए बालगीत वाले पुस्तकों की तलाश में गईं, लेकिन ज़्यादातर किताबों में, पिता को काम पर जाते हुए और माताओं को घर के कामकाज में तल्लीन दिखाया गया। इसलिए, उन्होंने स्वयं की जीवन-शैली को आधार बनाते हुए बाल कविताओं की रचना की। जिनमें कामकाजी माताओं और युवा लड़कियों की कहानियाँ बतायी गयी जो लड़कों की तरह खेल खेलना पसंद करती हैं। पिता को डायपर बदलते हुए, खाना पकाने और यहाँ तक कि सफाई में भी दिखाया गया। यह संग्रह पहली बार 1980 के दशक की शुरुआत में हिंदी में लिखा गया था। फिर 1982 में संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष द्वारा प्रकाशन के लिए चुना गया। इसका अनुवाद पाँच अन्य भाषाओं में किया गया।

हिंदी बालगीतों में जेंडर का प्रस्तुतीकरण:

ऊपर चंदा गोल गोल-

"ऊपर चंदा गोल गोल
नीचे धरती गोल गोल
मम्मी की रोटी गोल गोल
पापा का पैसा गोल गोल
हम भी गोल तुम भी गोल
सारी दुनिया गोलम गोल
आलू कचालू बेटा कहाँ गए थे
आलू कचालू बेटा कहाँ गए थे
बन्दर की टोकरी में सो रहे थे
बन्दर ने लात मारी रो रहे थे
मम्मी ने प्यार किया हंस रहे थे
पापा ने पैसे दिए नाच रहे थे
भैया ने लड्डू दिए खा रहे थे"

उपर्युक्त बालगीतों में माँ का कार्य रोटी अर्थात् रसोई और अपने संतान को प्यार देने तक ही सीमित है। इन कविताओं से स्पष्ट होता है कि एक महिला अपने जीवन में रसोई और घर के सदस्यों की देखभाल के कार्यों तक ही सीमित है। वह आर्थिक भूमिका निभाने में असमर्थ है।

मेरी गुड़िया-

"मेरी गुड़िया, मेरी गुड़िया।
हँसी खुशी की है ये पुड़िया।।
मै इसको कपड़े पहनाती।
इसको अपने साथ सुलाती।।
ये है मेरी सखी सहेली।
नहीं छोड़ती मुझे अकेली।।
ना ये ज्यादा बात बनाये।
मेरी बातें सुनती जाये।।
गाना इसको रोज सुनाती।
लेकिन खाना ये नहीं खाती।।"

छोटी सी मेरी गुड़िया-

"छोटी सी मेरी गुड़िया, है जादू की पुड़िया।
नीली उसकी आंख है, टूक टूक टूक टूक देखे।

लाल गाल फूलाती है, छुट्टा नाक उड़ाती है।
रात को ब्रश करती नहीं, मुह कभी धोती नहीं।
वैसे ही खेल रचाती है, खिलौनों में खो जाती है
चावल बनाई कच्ची रह गयी, दाल पकाई पतली हो गयी।
रोटी बनाई जल गयी, घी सारा गिर गया।
कोई भूखा ना रहे, ठहरो बनाती मालपूए।
मालपूए बनाने निकली, चिपक के बैठे हाथ ।
कुए से पानी लेने को निकली, खतम हो गयी बात।"

प्रस्तुत बालगीत में भी लड़की ही गुड़िया के साथ खेल रही है। वह गुड़िया की देखभाल और पोषण में माताओं की भूमिका के रूप में है। उपर्युक्त बालगीतों में गुड़िया के सुंदर रूप का भी चित्रण किया गया है, जो बाद में सौंदर्य मानदंड के रूप में भी स्थापित हो जाते हैं।

बंदर का ससुराल -

"लाठी लेकर बीन बजाता बंदर जा पहुँचा ससुराल
आया बंदरी को लेने,कौन बनाए रोटी दाल
काम पर रोज मैं जाऊँ ,पैसे कमाके लाऊँ
थका भूखा सो जाऊँ मैं ,कोई ना रखे मेरा ख़याल
लाठी लेकर बीन बजाता बंदर जा पहुँचा ससुराल
आया बंदरी को लेने,कौन बनाए रोटी दाल
घर के सारे काम मैं करती,पैसे बचाकर भी मैं रखती
तुम्हें खिलाती फिर मैं खाती ,ना तुम रखते मेरा खयाल
फिर ना होगी गुस्ताखी, ना करूँगा मनमानी
हुई मुझसे गलती, अब रखूँगा रोज तेरा खयाल
लाठी लेकर बीन बजाता बंदर जा पहुँचा ससुराल
आया बंदरी को लेने, आज मैं बनाऊँ रोटी दाल।"

उपर्युक्त बालगीत में बंदर को कमाऊ सदस्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह घर से बाहर जाकर कार्य करता है, पैसे कमाके लाता है, जबकि बंदरी को घरेलू कार्य करने के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वह बंदर के लिए खाना बनाती है, उसका खयाल रखती है और पैसे भी बचा कर रखती है। बालगीत में यह भी बताया गया है कि बंदरी पहले बंदर को खाना खिलाती है, फिर खुद खाती है। उपर्युक्त गीत पितृसतात्मक समाज को बाल मन में गढ़ने में सफल होता है।

लाल पीली मोटर है-

"लाल पीली मोटर है,
उसका मैं ड्राइवर हूँ।
चाबी मैं लगाऊँगा,
हैंडल को घुमाऊँगा।
पापा को बिठाऊँगा,
मम्मी को बिठाऊँगा।
मोटर चलेगी
पों पों पों।"

उपर्युक्त बालगीत पुरुष केन्द्रित है। 'ड्राईवर' के रूप में लड़का है, लड़की नहीं है। प्रस्तुत गीत यह संदेश देने में सफल प्रतीत होता है कि गाड़ी चलाना, घूमना-फिरना लड़कों का काम है।

"पापा फिंगर, पापा फिंगर,
पापा फिंगर, पापा फिंगर, कहाँ हो तुम?
यहाँ हूँ मैं, यहाँ हूँ मैं,
कैसे हो तुम ?
मम्मी फिंगर, मम्मी फिंगर, कहाँ हो तुम ?
यहाँ हूँ मैं, यहाँ हूँ मैं,
कैसे हो तुम ?
भैया फिंगर, भैया फिंगर, कहाँ हो तुम ?
यहाँ हूँ मैं ,यहाँ हूँ मैं, कैसे हो तुम?

दीदी फिंगर, दीदी फिंगर, कहाँ हो तुम ?

यहाँ हूँ , मैं यहाँ हूँ , मैं कैसे हो तुम?

बेबी फिंगर, बेबी फिंगर, कहाँ हो तुम?

यहाँ हूँ मैं, यहाँ हूँ मैं, कैसे हो तुम?"

हाथ में अंगूठा सबसे ज़्यादा महत्व रखता है। सांकेतिक भाषा में भी पसंद-नापसंद भावनाओं को प्रकट करने के लिए अंगूठे का ही प्रयोग होता है। उपर्युक्त कविता के माध्यम से बच्चों के मन-मस्तिष्क में यह संदेश पहुँचाया जा रहा है कि 'पिता' का स्थान परिवार में सबसे महत्वपूर्ण है। माता का स्थान उसके बाद, फिर भैया का, फिर दीदी का और अंत में बच्चे का। अर्थात् पुरुष का महत्व महिला से अधिक है।

निष्कर्ष : साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है हिंदी बालगीतों में भी जेंडर-भेद की झलक देखने को मिलती है। कई कविताएँ बच्चों के मन में लैंगिक रूढ़ियों के मानकों को स्थापित करती हैं। इसके अलावा, वे सौंदर्य के मानकों को परिभाषित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार की कविताएँ बहुत कम उम्र में ही लड़कियों को यह मानने के लिए प्रेरित करती हैं कि रसोई, घर की साज-सज्जा आदि उनकी दुनिया हैं और खाना बनाना, देखभाल करना उनका काम है।

इस प्रकार बच्चे बालगीत के माध्यम से जेंडर रूढ़िवादिता के शिकार हो जाते हैं। यह सोच इनकी जीवन शैली का महत्वपूर्ण अंग हो जाती है। अब लैंगिक समानता की अवधारणा समाज के लिए अलग हो गई है, फिर भी पितृसत्तात्मक विचारधारा की जड़ें इतनी मज़बूत हैं कि इसके प्रभाव को पूरी तरह से मिटाना आसान नहीं है।

संदर्भ-सूची

1. M.S. Haque & M.H. Khan ((2004 Language and Order of Hegemony in Society: CDA Perspectives. Panini: NSU Studies in Language and Literature, Vol. .2
2. Wood, Julia, T. (.(2005Gendered lives communication, gender, & culture (6th ed.). Canada: Wardsworth.
3. Berndt, Thomas, J. (.(1997Child development (2nd ed.). London: Brown and Bench Publishers
4. K.Mushtaq, S. Rasul.((2012Identity Construction in Nursery Rhymes: A Gender Based Study. LANGUAGE IN INDIA Strength for Today and Bright Hope for Tomorrow.
5. V.Q. Nasiruddin.Vol. (4) 3July .2013 Nursery Rhymes and the Social-Construction of Gender Roles. Journal of Educational and Social Research.
6. Rahman, Tariq (1999), Language, education and culture. OUP: Pakistan.

◆रिसोर्स पर्सन

भारतीय भाषा संस्थान,

हुंसूर रोड, मैसूर, कर्नाटक-570006

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित

Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha